शिक्षा का अधिकार

सर्व शिक्षा अभियान

सब पढ़ें सब बढ़ें

महान व्यक्तित्व

७

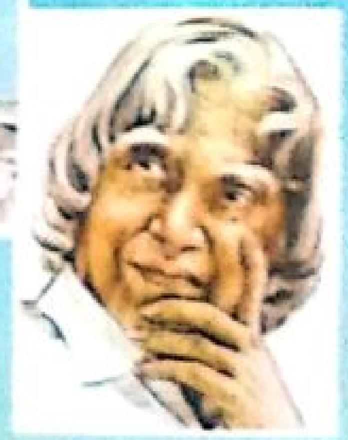

पाठ - १

ऋषि कुमार नचिकेता

आश्रम का वातावरण हवन की सुगन्ध से भरा हुआ था। दूर-दूर के ऋषि महात्माओं को यज्ञ में बुलाया गया था। चारों ओर वेद मंत्रोच्चारण की ध्वनि गूँज रही थी।

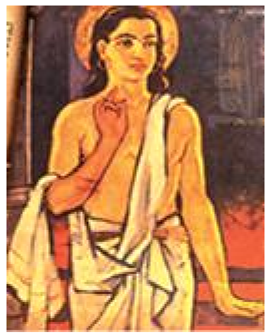

बहुत पुरानी बात है जब हमारे यहाँ वेदों का पठन-पाठन होता था। ऋषि आश्रमों में रहकर शिष्यों को वेदों का ज्ञान देते थे। उन दिनों एक महर्षि थे वाजश्रवा। वे महान विद्वान और चरित्रवान थे। नचिकेता उनके पुत्र थे। एक बार महर्षि वाजश्रवा ने 'विश्वजित' यज्ञ किया और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इस यज्ञ में मैं अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दूँगा।

कई दिनों तक यज्ञ चलता रहा। यज्ञ की समाप्ति पर महर्षि ने अपनी सारी गायों को यज्ञ करने वालों को दक्षिणा में दे दिया। दान देकर महर्षि बहुत संतुष्ट हुए।

बालक नचिकेता के मन में गायों को दान में देना अच्छा नहीं लगा क्योंकि वे गायें बूढ़ी और दुर्बल थीं। ऐसी गायों को दान में देने से कोई लाभ नहीं होगा। उसने सोचा पिताजी जरूर भूल कर रहे हैं। पुत्र होने के नाते मुझे इस भूल के बारे में बताना चाहिए।

नचिकेता पिता के पास गया और बोला, "पिताजी आपने जिन वृद्ध और दुर्बल गायों को दान में दिया है उनकी अवस्था ऐसी नही थी कि ये दूसरों को दी जाएं।"

महर्षि बोले "मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दूँगा, गायें भी तो मेरी सम्पत्ति थीं। यदि मैं दान न करता तो मेरा यज्ञ अधूरा रह जाता।"

नचिकेता ने कहा, "मेरे विचार से दान में वही वस्तु देनी चाहिए जो उपयोगी हो तथा दूसरों के काम आ सके फिर मैं तो आपका पुत्र हूँ बताइए आप मुझे किसे देंगे ?"

महर्षि ने नचिकेता की बात का कोई उत्तर नहीं दिया परन्तु नचिकेता ने बार-बार वही प्रश्न दोहराया। महर्षि को क्रोध आ गया। वे झल्लाकर बोले, "जा, मैं तुझे यमराज को देता हूँ।"

नचिकेता आज्ञाकारी बालक था। उसने निश्चय किया कि मुझे यमराज के पास जाकर अपने पिता के वचन को सत्य करना है। यदि मैं ऐसा नहीं करूँगा तो भविष्य में मेरे पिता जी का

सम्मान नहीं होगा।

नचिकेता ने अपने पिता से कहा, ‘‘मैं यमराज के पास जा रहा हूँ, अनुमति दीजिए। महर्षि असमंजस में पड़ गए। काफी सोच- विचार के बाद उन्होंने हृदय को कठोर करके उसे यमराज के पास जाने की अनुमति दी।

नचिकेता यमलोक पहुँच गया परन्तु यमराज वहाँ नहीं थे। यमराज के दूतों ने देखा कि नचिकेता का जीवनकाल अभी पूरा नहीं हुआ है इसलिए उसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। लेकिन नचिकेता तीन दिनों तक यमलोक के द्वार पर बैठा रहा।

चौथे दिन जब यमराज ने बालक नचिकेता को देखा तो उन्होंने उसका परिचय पूछा। नचिकेता ने निर्भीक होकर विनम्रता से अपना परिचय दिया और यह भी बताया कि वह अपने पिताजी की आज्ञा से वहाँ आया है।

यमराज ने सोचा कि यह पितृभक्त बालक मेरे यहाँ अतिथि है। मैंने और मेरे दूतों ने घर आए हुए इस अतिथि का सत्कार नहीं किया। उन्हांेने नचिकेता से कहा,‘‘हे ऋषिकुमार, तुम मेरे द्वार पर तीन दिनों तक भूखे - प्यासे पड़े रहे, मुझसे तीन वर माँग लो।’’

नचिकेता ने यमराज को प्रणाम करके कहा, ‘‘यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो पहला वरदान यह दीजिए कि मेरे वापस जाने पर मेरे पिता मुझे पहचान लें और उनका क्रोध शान्त हो जाए।’’

यमराज ने कहा- ‘‘तथास्तु‘‘ अब दूसरा वर माँगो।

नचिकेता ने सोचा पृथ्वी पर बहुत से दुःख हैं, दुःख दूर करने का उपाय क्या हो सकता है? इसलिए नचिकेता ने यमराज से दूसरा वरदान माँगा-

स्वर्ग मिले किस रीति से, मुझको दो यह ज्ञान।
मानव के सुख के लिए, माँगूं यह वरदान।।

यमराज ने बड़े परिश्रम से वह विद्या नचिकेता को सिखाई। पृथ्वी पर दुःख दूर करने के लिये विस्तार में नचिकेता ने ज्ञान प्राप्त किया। बुद्धिमान बालक नचिकेता ने थोड़े ही समय में सब बातें सीख लीं। नचिकेता की एकाग्रता और सिद्धि देखकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने नचिकेता से तीसरा वरदान माँगने को कहा।

नचिकेता ने कहा, ’’मृत्यु क्यों होती है? मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या होता है? वह कहाँ जाता है?’’

यह प्रश्न सुनते ही यमराज चौंक पड़े। उन्होंने कहा, ’’संसार की जो चाहो वस्तु माँग लो परन्तु यह प्रश्न मत पूछो, किन्तु नचिकेता ने कहा, ’’आपने वरदान देने के लिए कहा, अतः आप मुझे इस रहस्य को अवश्य बताएँ।’’

नचिकेता की दृढ़ता और लगन को देखकर यमराज को झुकना पड़ा।

उन्होंने नचिकेता को बताया कि मृत्यु क्या है ? उसका असली रूप क्या है ? यह विषय कठिन है इसलिए यहाँ पर समझाया नहीं जा सकता है, किन्तु इतना कहा जा सकता है कि

जिसने पाप नहीं किया, दूसरों को पीड़ा नहीं पहुँचाई, जो सच्चाई की राह पर चला उसे मृत्यु की पीड़ा नहीं होती। कोई कष्ट नहीं होता।

इस प्रकार नचिकेता ने छोटी उम्र में ही अपनी पितृभक्ति, दृढ़ता और सच्चाई के बल पर ऐसे ज्ञान को प्राप्त कर लिया जो आज तक बड़े-बड़े पण्डित, ज्ञानी और विद्वान भी न जान सके।

(कठोपनिषद् के आधार पर)

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1.नचिकेता ने दान में कैसी वस्तु देने को बताया?

2.नचिकेता ने दूसरा वरदान क्या माँगा ?

3.नचिकेता के तीसरा वरदान माँगने पर यमराज क्यों चौंक पड़े?

4.यमराज ने नचिकेता को तीसरा वरदान किस प्रकार दिया?

रिक्त स्थान भरिए-

5.नचिकेता ने निश्चय किया कि मुझे यमराज के पास जाकर पिता के वचन को.................करना है।

6.घर आये हुए अतिथि का हर प्रकार से ....करना चाहिए।

7.पृथ्वी पर बहुत से ....हैं दुःख दूर करने का ....क्या हो सकता है।

8.जो सच्चाई की राह पर चलता है, उसे मृत्यु की............................नहीं होती।

सही विकल्प चुनकर लिखिए-

9.महर्षि वाजश्रवा ने यज्ञ किया-

अ. अश्वमेधब. विश्वजितस. महामृत्यु°जय

10. महर्षि वाजश्रवा ने ब्राह्मणों को गायें दान में दीं। क्योंकि-

अ.ब्राह्मण गायें माँग रहे थे।

ब.गायें बूढ़ी हो गयी थीं।

स.महर्षि ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दूँगा।

11.नचिकेता यमराज के पास गया क्योंकि-

अ.वह अपने पिता की आज्ञा का पालन करता था।

ब.वह अपने पिता से नाराज था।

स.वह यमराज से विद्या ग्रहण करना चाहता था।

12.यमराज ने नचिकेता से तीन वरदान माँगने को कहा, क्योंकि-

अ.वे नचिकेता से प्रसन्न थे।

ब.नचिकेता को तीन दिनों तक भूखे-प्यासे रहना पड़ा।

स.नचिकेता ने यमराज से प्रार्थना की थी।

योग्यता विस्तार-

- कहानी को पढ़ कर, समझकर, अपने घर में सुनाइए।
- इस कहानी की कौन सी बात अच्छी लगी ? लिखिए।

पाठ - 2

वैदिक कालीन नारियाँ

गार्गी

प्राचीन काल से ही हमारे देश में ऐसी महान नारियाँ जन्म लेती रही हैं जिन्होंने ज्ञान-विज्ञान, त्याग-तपस्या, साहस और बलिदान के अतुलनीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। जिन्होंने अपने ज्ञान से यह बता दिया कि अगर बालिकाओं को शिक्षा के अवसर प्रदान किए जाएँ तो वे पुरुषों से किसी भी प्रकार कम नहीं साबित होंगी ।

वैदिक काल में ऐसी ही एक ज्ञानवती महिला हुई हैं- गार्गी। गर्ग गोत्र में जन्म लेने के कारण इन्हें गार्गी कहा जाता था। गार्गी अत्यन्त शिक्षित, विदुषी महिला थीं।

एक बार राजा जनक ने यज्ञ किया। उसमें देशभर के प्रकाण्ड विद्वान उपस्थित हुए। राजा जनक के मन में यह इच्छा जाग्रत हुई कि जो विद्वान यहाँ आए हैं, पता लगाया जाय इनमें सर्वश्रेष्ठ विद्वान कौन है ?

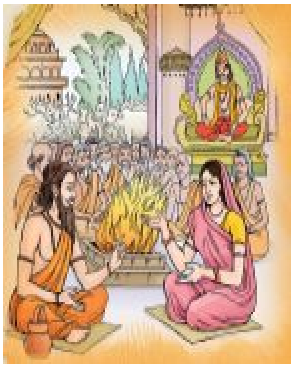

इसके लिए उन्होंने अपनी गौशाला की एक हजार गायों के सींगों में दस-दस तोला सोना बँधवा दिया और घोषणा की कि जो सर्वश्रेष्ठ विद्वान हो वह इन सब गायों को ले जाए। सभी विद्वान घबरा गए क्योंकि गायें ले जाने का अर्थ था स्वयं को सर्वश्रेष्ठ विद्वान साबित करना। जब कोई भी गायें लेने आगे नहीं बढ़ा तो याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों से कहा, ''उठो और गायों को ले चलो।'' शिष्य गायों को बाँध कर ले जाने लगे। इस पर विद्वानों को क्रोध आ गया। उन्होंने बिगड़कर याज्ञवल्क्य से पूछा, ''क्या तुम इतनी बड़ी सभा में स्वयं को सबसे बड़ा विद्वान समझते हो?'' याज्ञवल्क्य ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, ''यह बात नहीं है। यहाँ उपस्थित सभी विद्वानों को मैं प्रणाम करता हूँ। मैं गायें इसलिए ले जा रहा हूँ, क्योंकि मुझे इनकी आवश्यकता है।''

फिर क्या था, सभी विद्वान चिल्ला उठे, ''हमसे शास्त्रार्थ करो।'' याज्ञवल्क्य इस बात पर सहमत हो गए और विनम्रतापूर्वक सभी विद्वानों के प्रश्नों का उत्तर देने लगे। धीरे-धीरे सभी विद्वान प्रश्न पूछ कर चुप हो गये। अन्त में गार्गी ने कहा, ''राजन! आज्ञा हो तो मैं भी प्रश्न करूँ।'' राजा जनक ने आज्ञा दे दी। गार्गी ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछना प्रारम्भ कर दिया। गार्गी के प्रश्न अत्यन्त पैने तथा गहन अध्ययन पर आधारित थे। प्रश्नों को सुनकर विद्वतमण्डली मन ही मन गार्गी के ज्ञान की सराहना करने लगी। अंततः एक प्रश्न ऐसा आया जिस पर याज्ञवल्क्य रुक गए और उत्तर न दे सके किन्तु गार्गी अत्यन्त बुद्धिमती थीं। वह नहीं चाहती थीं कि किसी विद्वान का अपमान हो और वह भी याज्ञवल्क्य जैसे परम विद्वान का। वह चुप हो गयीं और भरी सभा में कहा,''इस सभा में याज्ञवल्क्य से बड़ा कोई विद्वान नहीं है। इन्हें कोई नहीं हरा सकता।" सारी सभा गार्गी की विद्वता और उदारता की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगी। ज्ञान और उदारता की ऐसी बेजोड़ प्रतिभाएँ निश्चय ही हमारे देश का गौरव हैं।

अपाला

महर्षि अत्रि की पुत्री अपाला अद्वितीय सुन्दरी और बुद्धिमती थी। प्रभात काल में स्नान करते समय उसकी दृष्टि अपनी जंघा पर गयी जहाँ छोटे-छोटे सफेद दाग दिखायी दे रहे थे। अपाला उन दागों को देखकर चकित और चिन्तित हो उठी। तभी से अपाला स्नान के समय प्रतिदिन उन दागों को ध्यान से देखती थी और विस्मय में पड़ जाती थी क्योंकि दाग धीरे-धीरे बढ़ते हुए चकत्ते का रूप धारण कर रहे थ्ंो। उसने यह आसानी से समझ लिया कि ये साद्दारण दाग नहीं हैं, श्वेत दाग हैं। अपाला ने कई बार सोचा कि वह उन दागांे की चर्चा अपने पिता से कर दे, किन्तु वह ऐसा न कर सकी। वह उन दागों को हमेशा छिपाए रहती थी और इसके बारे में किसी को नहीं बताती थी।

अपाला जब विवाह के योग्य हुई तो अत्रि को उसके विवाह की चिन्ता हुई। संयोगवश वेदों के ज्ञाता विद्वान कृशाश्व ने अतिथि के रूप में अत्रि के आश्रम में प्रवेश किया। अपाला ने अतिथि कृशाश्व के खान-पान का उचित प्रबन्ध किया। अपाला के सौन्दर्य और व्यवहार कुशलता से मुग्ध होकर कृशाश्व ने अपाला के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

महर्षि अत्रि ने प्रसन्नतापूर्वक अपाला का हाथ कृशाश्व के हाथ में दे दिया। विवाहोपरान्त अपाला कृशाश्व के साथ उनके आश्रम में चली गई।

दिन बीतने के साथ ही अपाला के शरीर के सफेद चकत्ते भी बढ़ने लगे। अपाला बड़े चतुराई से उन्हें कृशाश्व से भी छिपाए रहती थी। एक दिन कृशाश्व की दृष्टि उन सफेद चकत्तों पर जा पड़ी। तभी से वह अपाला को उपेक्षा व तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगा। अपाला को यह समझते देर न लगी कि उसका पति उसको अपने साथ नहीं रखना चाहता है।

पति से अपमानित होकर अपाला अपने पिता के आश्रम में पुनः चली गई। उसने रुँधे हुये कंठ से सभी बातें अपने पिता को बता दीं और कहा कि उन चकत्तों के कारण उसके पति ने अपमानित कर अपने आश्रम से बाहर कर दिया।

इससे अत्रि बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपाला को सान्त्वना देते हुए कहा,“ चिन्ता की कोई बात नहीं पुत्री ! श्वेत दाग के कारण तुम्हारे पति ने आश्रम से निकाल दिया है किन्तु पिता की गोद पहले की तरह तुम्हारे लिए खाली है। तुम पहले की तरह मेरे आश्रम में ही नहीं मेरी गोद में रहो और इस रोग के निदान के लिये पुरुषार्थ करो। इसके लिए तुम्हें इन्द्र की उपासना करनी होगी।“

पिता से प्रेरित होकर अपाला इन्द्र की उपासना में लग गई।

वह नित्य प्रेमपूर्वक मंत्रों का जाप करती और सत्तू तथा सोमरस का नैवेद्य चढ़ाया करती थी। धीरे-धीरे कई माह व्यतीत हो गए। सत्तू अर्पित करने के बाद जब सोमरस की बारी आई तो सोमलता को पीसने के लिये कोई पत्थर नहीं था। उसने सोमलता को अपने दाँतों से पीस कर धरती पर गिरते हुए सोमरस का पान करने के लिये ’प्रभु’ से प्रार्थना की ।

अपाला के प्रेम और उसकी भक्ति पर इन्द्र गद्गद् हो उठे। उन्होंने प्रकट रूप में सत्तू और सोमरस का पान करते हुए कहा, “अपाले! तुम धन्य हो तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा और तुम्हारे प्रेम और भक्ति की कहानी भी अमर हो जाएगी।”

इन्द्र के वरदान से अपाला रोग मुक्त हो गयी। उसका शरीर स्वर्ण की तरह चमकने लगा। वह प्रेम और निष्ठा के फलस्वरूप अमर हो गयी।

अभ्यास

1.राजा जनक ने क्या घोषणा की ?

2.गार्गी याज्ञवल्क्य द्वारा प्रश्न का उत्तर न दिए जाने पर चुप क्यों हो गयी ?

3.अपाला किस बात से चिन्तित हो उठी ?

4.अपाला रोग मुक्त किस प्रकार हुई ?

5.सही विकल्प चुनिए

क.याज्ञवल्क्य द्वारा प्रश्न का उत्तर न दिए जाने पर गार्गी चुप हो गयीं क्योंकि-

□उसे बड़ा क्रोध आ रहा था।

□सभा के विद्वान हँसेंगे।

□वह याज्ञवल्क्य जैसे परम विद्वान का अपमान सहन नहीं कर सकती थीं।

ख.बालिकाएँ हर क्षेत्र में स्वयं को साबित कर सकती हैं, अगर-

□उन्हें बाहर निकलने से मना किया जाए।

□निरक्षर रखा जाए।

□शिक्षा और समानता के अवसर प्रदान किए जाएँ।

6.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

- गार्गी अत्यन्त ....महिला थीं।
- अपाला के ....इन्द्र गद्गद् हो उठे।

योग्यता विस्तार-

- अपने पुस्तकालय से अन्य महान नारियों के विषय में पुस्तक लेकर पढ़िए।
- हमें किसी रोगग्रस्त व्यक्ति के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए? अपने विचार लिखिए।

पाठ - 3

राजा भगीरथ

जब मनुष्य कोई कार्य करने का दृढ़ संकल्प कर लेता है तब कार्य कितना भी कठिन हो, देखने में कितना भी असम्भव जान पड़ता हो, वह कर ही लेता है। एक-दो नहीं ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। हमारे देश के इतिहास में ऐसे अनेक महापुरुषों का वर्णन है। उन्हीं में से एक का जीवन-चरित्र यहाँ दिया जा रहा है।

जिस वंश के महाराज रामचन्द्र थे, उसी वंश के, उनके कई पीढ़ी पहले अयोध्या में राजा सगर राज्य करते थे। राजा सगर की दो रानियाँ थीं। राजा सगर ने यज्ञ आरम्भ किया। प्राचीन काल में यज्ञ के समय एक घोड़ा छोड़ दिया जाता था और वह विजय का चिह्न माना जाता था। राजा सगर के घोड़े को इन्द्र ने पकड़ लिया।

जब बहुत खोजने पर भी घोड़ा न मिला तब राजा सगर ने अपने पुत्रों से घोड़ा खोजकर लाने के लिए कहा। राजा के पुत्र यज्ञ का घोड़ा ढूँढ़ने के लिए घर से निकले। देश-विदेश उन्होंने खोज डाला, किन्तु घोड़े का कहीं पता न चला, तब उन्होंने पृथ्वी खोदना आरम्भ किया। एक-एक भाई धरती खोद-खोदकर ढूँढ़ने लगा। इस ढुँढ़ाई में अनेक जीव-जन्तुओं की हत्या होने लगी, इससे लोग बहुत दुःखी हुए। लोगों ने सगर के पुत्रों से अनुनय-विनय भी की, परन्तु उन्हें तो पिता के यज्ञ को पूर्ण करना था। उन्होंने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया और धरती खोदते चले गये। अन्त में एक स्थान पर पहुँचे, जहाँ मुनि कपिल बैठे हुए थे और वहीं उनके निकट घोड़ा बँधा हुआ था। राजा के पुत्रों ने समझा कि हमारे पिता के यज्ञ में विघ्न डालने वाला यही है। क्रोध में बोले , ''तू ही हमारे पिता के यज्ञ के घोड़े को चुरा लाया है। देख, सगर के पुत्र तुझे खोजते-खोजते आ गये। मुनि कपिल को बहुत क्रोध आया और उन्होंने इन पुत्रों को वहीं भस्म कर दिया।

राजा सगर ने बड़ी प्रतीक्षा के बाद भी जब देखा कि मेरे पुत्र नहीं लौटे तब उन्होंने अपने दूसरे पुत्र को भेजा। इनका यह पुत्र बहुत परिश्रम से वहाँ पहुँचा। उसे सारी घटना का पता चला। घोड़ा वह ले आया, यज्ञ समाप्त हो गया। भस्म हुए पुरखों को तारने के लिए गंगा की आवश्यकता थी, गंगा को लाए कौन ?

सगर के पश्चात् उनके वंश में अनेक लोगों ने बड़ी तपस्या की, किन्तु कोई गंगा की धारा लाने में समर्थ नही हुआ। अन्त में सगर के प्रपौत्र भगीरथ ने प्रतिज्ञा की, कि मै गंगा की धारा बहाकर लाऊँगा। भगीरथ विख्यात महाराज दिलीप के पुत्र थे। इन्हें अपने पितामहों की कथा सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उन्हें इस बात का दुःख था कि मेरे पिता, पितामह यह कार्य न कर सके। उनके कोई सन्तान न थी और वह सारा राजकार्य मन्त्रियों को सौंपकर तप करने चले गये। उन्होंने अपने लाभ के लिए अथवा अपने हित के लिए तप नहीं किया।

उनकी एकमात्र अभिलाषा यही थी कि गंगा की धारा लाकर अपने पितामहों की राख अर्पित कर दूँ। बहुत तपस्या करने के पश्चात् वह गंगा की धारा लाने में सफल हुए। इसीलिए गंगा को भागीरथी भी कहते हैं।

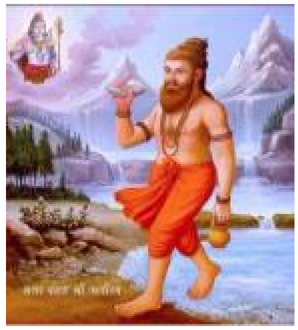

यह प्रश्न हो सकता है कि भगीरथ गंगा को किस प्रकार लाये ? ऐसा जान पड़ता है कि गंगा की धारा पहले पहाड़ों के बीच होकर बहती थी। अपने राज्य के लिए तथा देश के लिए भगीरथ उसकी धारा वहाँ से निकाल कर लाये। आजकल भी पहाड़ों को काटकर बड़ी-बड़ी नहरें लायी जाती हैं। भगीरथ ने लगन और विश्वास से यह कार्य किया और वह पूर्ण रूप से सफल हुए। यह कार्य महान था इसी से महान कार्य करने में जो लोग कार्यरत होते हैं, कहा जाता है उन्होंने भगीरथ प्रयत्न किया।

ऐसा कहा जाता है, कि गंगा को लाने के पश्चात् और अपने पितामहों की धार्मिक क्रिया करने के पश्चात् बहुत दिनों तक महाराजा भगीरथ ने अयोध्या में राज्य किया। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने गंगा की धारा अपने राज्य के हित के लिए बहायी। वाल्मीकि ने अपनी रामायण में उस घटना का बहुत रमणीक वर्णन किया है। आगे-आगे भगीरथ का रथ चला आ रहा है और पीछे-पीछे गंगा की धारा वेग से बहती चली आ रही है।

गंगा से हमारे प्रान्त को बहुत लाभ होता है। धन-धान्य से हमें कितना लाभ पहुँचता है, उसका वर्णन कहाँ तक किया जाय। इसकी महत्ता से पोथियाँ भरी पड़ी हैं। जिस महापुरुष ने ऐसी सरिता का दान हमें दिया उसके कृतज्ञ हम क्यों न हों ? भगीरथ जी के कार्य का महत्त्व हम इस बात से समझ सकते हैं कि यदि आज गंगा न होती तो हमारी स्थिति क्या होती ?

भगीरथ एक महान राजा ही नहीं थे, महान व्यक्ति भी थे, उन्होंने मानवता के हित के लिए सब कुछ किया। चिरकाल तक मानवता उनकी ऋणी रहेगी।

अभ्यास

1.राजा भगीरथ किसके पुत्र थे ?

2.राजा भगीरथ ने कौन सा महान कार्य किया ?

3.गंगा को भागीरथी क्यों कहा जाता है ?

4.सही (□) अथवा गलत (ग) का चिह्न लगाइए-

(अ)भगीरथ राजा सगर के पुत्र थे।

(ब)गंगा को भागीरथी भी कहते हैं।

(स)भगीरथ गंगा की धारा लाने में सफल हुए।

5.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(अ)राजा सगर के घोड़े को .... से पकड़ लिया।

(ब)भगीरथ ने .... और .... से कार्य किया और वह पूर्ण रूप से सफल हुए।

(स)गंगा को लाने के पश्चात् और अपने .... की धार्मिक क्रिया करने के पश्चात् बहुत दिनों तक महाराजा भगीरथ ने .... में राज्य किया।

पाठ - ४

महर्षि वाल्मीकि

अयोध्या के समीप तमसा नदी के किनारे वाल्मीकि तपस्या करते थे। वह प्रतिदिन प्रातः स्नान के लिये नदी जाया करते थे। एक दिन जब वह स्नान करके लौट रहे थे, तो उन्होंने एक क्रौंच पक्षी के जोड़े को क्रीड़ा करते देखा। वाल्मीकि मुग्ध होकर देख ही रहे थे कि एक व्याद्द ने तीर चला कर जोड़े में से एक पक्षी को मार दिया। दूसरा पक्षी पास के वृक्ष पर बैठकर अपने मरे हुये साथी को देखकर विलाप करने लगा। इस करुण दृश्य को देखकर वाल्मीकि के मुख से स्वतः कविता का स्रोत फूट पड़ा ।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौ॰चमिथुनादेकम् अवधीः काममोहितम्।।

(अर्थात्-हे व्याध ! तुमने काम में मोहित क्रौंच पक्षी के जोड़े में से जो एक को मार दिया है, इसलिए तुम चिर स्थाई प्रतिष्ठा (शान्ति) को नहीं प्राप्त कर सकोगे।)

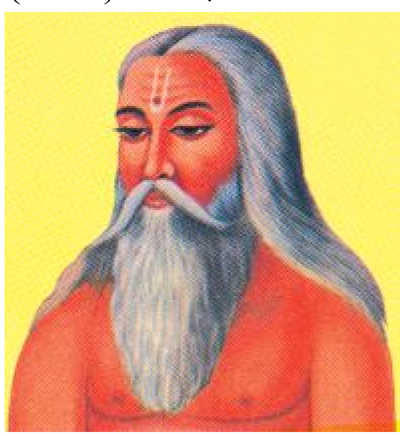

वाल्मीकि ने आगे चलकर रामायण की रचना की। महर्षि वाल्मीकि का जन्म सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था। वह कब और कहाँ जन्में इस बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। बचपन में महर्षि वाल्मीकि का नाम 'रत्नाकर' था। ईश्वरीय प्रेरणा से वह सांसारिक जीवन (मोह) को त्याग कर परमात्मा के ध्यान में लग गए। उन्होंने कठोर तपस्या की। तपस्या में वह इतने लीन हो गए कि उनके शरीर पर दीमक ने अपनी बाँबी (वल्मीक) बना लिया। इसी कारण उनका नाम वाल्मीकि पड़ा।

तमसा नदी के किनारे स्थित आश्रम में रहकर उन्होंने कई रचनाएँ की । प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामायण' की भी रचना यहीं पर की गई। रामायण में वर्णित कथा जैसा सुन्दर, स्पष्ट और भक्ति-भावपूर्ण वर्णन दूसरे कवि के काव्य में नहीं मिलता है। वाल्मीकि को संस्कृत साहित्य का आदि कवि माना जाता है। वाल्मीकि-रामायण में सात काण्ड (खण्ड) हैं। उन्होंने अपनी

इस रचना में राम के चरित्र का ही नहीं बल्कि उस समय के समाज की स्थिति, सभ्यता, शासन-व्यवस्था तथा लोगों के रहन-सहन का भी वर्णन किया है। रामायण को त्रेता युग का इतिहास-ग्रंथ भी माना जाता है।

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पुरुषोत्तम श्री राम के पुत्रों लव-कुश का जन्म हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा महर्षि की देख-रेख में हुई थी। उन्होंने अपने ज्ञान और शिक्षा-कौशल से लव-कुश को अल्प आयु में ही ज्ञानी बनाया और युद्ध-कला में पारंगत कर दिया था।

श्री राम के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा जब महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचा तो लव-कुश ने उसे बाँध लिया। उन्होंने लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की सेना को पराजित कर अपनी असीम शक्ति तथा प्रतिभा का परिचय दिया। उन दोनों ने श्री राम को भी अपनी वीरता और बुद्धि से हतप्रभ कर दिया। उनका यह पराक्रम महर्षि वाल्मीकि की शिक्षा-दीक्षा का ही परिणाम था।

महर्षि वाल्मीकि कवि, शिक्षक, ज्ञानी तथा त्रिकालदर्शी ऋषि थे। रामायण ग्रंथ भारत का ही नहीं बल्कि सारे संसार की अनमोल कृति है। महर्षि वाल्मीकि को उनकी नीति, शिक्षा, दूरदर्शिता तथा कृतियों के कारण आज भी आदर और सम्मान के साथ याद किया जाता है।

अभ्यास

1.निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

(क)किस घटना को देखकर वाल्मीकि के मुख से कविता फूट पड़ी ?

(ख)वाल्मीकि ने अपने ग्रंथ रामायण में किस कथा का वर्णन किया है ?

(ग)वाल्मीकि रामायण में कितने काण्ड (खण्ड) हैं ?

(घ)वाल्मीकि को क्यों याद किया जाता है ?

2.वाक्य पूरा करिए-

(क)अयोध्या के समीप तमसा नदी के किनारे ....।

(ख)ईश्वरीय प्रेरणा से उन्होंने सांसारिक जीवन (मोह) को त्यागकर..............।

3.सही या गलत वाक्यों पर (√) अथवा (ग्) चिõ लगाएं-

(क)वाल्मीकि के बचपन का नाम रत्नाकर था।

(ख)उनके शरीर पर दीमक ने बाँबी (वल्मीक) बना लिया। इसी कारण उनका नाम वाल्मीकि पड़ा ।

(ग)उन्होंने रामचरित मानस की रचना की।

(घ)वाल्मीकि ने श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा बाँध लिया था ।

शिक्षकों के लिए-

शिक्षक कक्षा में अन्य ऋषि-मुनियों की चर्चा/कहानी बच्चों को सुनाएँ।

पाठ - ५

श्रीकृष्ण

आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व भारत की भूमि की समृद्धि और सम्पन्नता अपनी चरम सीमा पर थी। देश में अनेक वैभव सम्पन्न तथा शक्तिशाली राज्य थे। भारतीय समाज में एक नयी उमंग, एक नयी स्फूर्ति आ गयी थी किन्तु यह वैभव और शक्ति अधिक दिन तक स्थिर न रह सकी। पारस्परिक विद्वेष और स्वेच्छाचारिता की भावनाएँ प्रबल होने लगीं। जन कल्याणकारी परम्पराएँ टूटने लगीं। प्रजा जरासंध, कंस और शिशुपाल जैसे शासकों के दमन चक्र का शिकार बन गयी। अत्याचार और राजनीतिक कुचक्र के इस वातावरण में कंस की बहन देवकी अपने पति वासुदेव के साथ कंस के कारागार में बन्दी थीं। वहाँ देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। कंस के भय से श्रीकृष्ण का पालन-पोषण गोकुल में नन्द के घर में हुआ।

श्रीकृष्ण बाल्यावस्था से ही इतने पराक्रमी और साहसी थे कि उनके द्वारा किए गए कार्यों को देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे और उन्हें अलौकिक मानने लगे थे। कंस अपनी सुरक्षा के लिए कृष्ण का अन्त करना चाहता था। इस कार्य के लिए उसने जिन लोगों को भेजा उन सबका श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में ही वध कर दिया। कभी तो वे अपनी बाँसुरी के मधुर स्वर से सभी को आत्मिक सुख प्रदान करते दिखायी पड़ते तो कभी कंस के अत्याचारों से गोकुलवासियों की रक्षा करते हुए लोकहित में प्रवृत्त दिखायी देते। श्रीकृष्ण को अध्ययन करने हेतु सन्दीपन गुरु के आश्रम भेजा गया। गुरुकुल में कृष्ण ने अपने गुरु की सेवा करते हुए विद्या प्राप्त की।

कंस के स्वेच्छाचारी एवं क्रूर शासन के कारण प्रजा में व्यापक असन्तोष था। गोकुल में श्रीकृष्ण के नेतृत्व में कंस के अत्याचारी शासन का विरोध आरम्भ हो गया। कंस इस स्थिति को जानता था। उसने कृष्ण के वध का षड्यन्त्र रचा और अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण को बुलवाया। गोकुलवासियों को कंस पर सन्देह था। वे नहीं चाहते थे कि श्रीकृष्ण मथुरा जाकर कंस के जाल में फँसे। श्रीकृष्ण ने तो अत्याचारियों का अन्त करने का संकल्प ही कर लिया था, अतः वे अपने बड़े भाई बलराम के साथ मथुरा आ पहुँचे। योजनानुसार मथुरा में मल्लयुद्ध आरम्भ हुआ। श्रीकृष्ण ने मल्लयुद्ध मंे कंस के चुने हुए पहलवानों को पराजित किया और अन्त में उन्होंने कंस को मार डाला। उस समय हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र का राज्य था। वहाँ के राज परिवार में कौरव और पाण्डवों के बीच कलह चल रही थी। पाण्डवों को उनका अधिकार देने के लिए कौरव कदापि तैयार नहीं थे। इस कलह को रोकने के लिए श्रीकृष्ण ने बहुत प्रयास किया। वे पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर कौरवों के पास गए थे। श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से निवेदन किया, ‘‘महाराज! वीरों का विनाश हुए बिना ही कौरवों और पाण्डवों में सन्धि हो जाए, मैं यही प्रार्थना करने आया हूँ।’’ श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र के निरंकुश पुत्र दुर्योधन को भी समझाते हुए कहा, ‘‘ हे तात! सन्धि से ही तुम्हारा और जगत का कल्याण होगा।’’ लेकिन दुर्योधन अपने इसी हठ पर डटा रहा कि मैं युद्ध के बिना सुई की नोंक के बराबर भी भूमि पाण्डवों को नहीं दूँगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण का सन्धि प्रयास असफल हो गया। परिणामस्वरूप दोनों कौरवों एवं पाण्डवों में भयंकर युद्ध हुआ जिसे महाभारत युद्ध के नाम से जाना जाता है।

महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने। अर्जुन राज्य और सुख के लिए अपने गुरु तथा कुल के लोगों से युद्ध करने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्हें अपने स्वजनों को देखकर मोह उत्पन्न हो गया। उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने कर्त्तव्य के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि आत्मा, अजर और अमर है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र ग्रहण करता है, उसी प्रकार आत्मा जीर्ण शरीर को छोड़कर नये शरीर में प्रवेश करती है। इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है और न वायु सुखा सकती है। अतः प्रत्येक मनुष्य को फल की चिंता किए बिना अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। सफलता और असफलता के प्रति समान भाव रखकर कार्य करना ही श्रेयस्कर है। यही कर्मयोग है। कृष्ण के उपदेश गीता के अमृत वचन हैं।

गीता में श्रीकृष्ण ने कर्म का जो महामन्त्र दिया है, वह मानव समाज के लिए वरदान है। इस पर मनन कर मनुष्य सांसारिक सुख से उÿपर उठकर कर्म करने की प्रेरणा प्राप्त करता है जो जीवन का वास्तविक सुख है। गीता वास्तव में भारतीय चिन्तन और धर्म का निचोड़ है और इसमंे सारे संसार तथा समस्त मानव जाति को एक सूत्र में बाँधने की पूर्ण क्षमता है।

श्रीकृष्ण के उपदेश सुनकर अर्जुन को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ और उसने वीरतापूर्वक युद्ध किया। श्रीकृष्ण के कुशल संचालन के कारण महाभारत के युद्ध मंे पाण्डव विजयी हुए। वस्तुतः यह पाण्डवों की कौरवों पर विजय नहीं थी बल्कि धर्म की अधर्म पर, न्याय की अन्याय पर, सत्य की असत्य पर विजय थी।

श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन अत्याचार और अहंकार से संघर्ष करते हुए व्यतीत हुआ। कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि अनेक निरंकुश शासकों का संहार श्रीकृष्ण के ही द्वारा हुआ। अनेक निरंकुश राजाओं की प्राणाहुति महाभारत के समर क्षेत्र में हो गयी। यही नहीं, अहंकार के वश में होकर श्रीकृष्ण की यादव सेना भी आपस में लड़कर समाप्त हो गयी। कहा जाता है कि आखेटक द्वारा चलाया गया बाण श्रीकृष्ण के पैर में आकर लगा इसी से श्रीकृष्ण के जीवन का अन्त हो गया।

श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के विषय में संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वे व्यक्ति नहीं एक परम्परा थे। वे दार्शनिक भी थे और कर्मयोगी भी। वे राजनीतिज्ञ भी थे और समाज सुधारक भी। वे योद्धा भी थे और शान्ति के अग्रदूत भी। वे गुरु थे और सखा भी थे। इसलिए तो लोग उन्हें ईश्वर का अवतार मानते हैं।

अभ्यास-प्रश्न

1.श्रीकृष्ण के समय भारत की क्या स्थिति थी ?

2.श्रीकृष्ण के बाल जीवन का वर्णन करिये।

3.श्रीकृष्ण के गुरु का क्या नाम था ?

4.कंस के जीवन का अन्त किस प्रकार हुआ ? कौरवों तथा पाण्डवों के बीच सन्धि के लिए कृष्ण ने क्या किया ?

5.युद्ध क्षेत्र में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गए उपदेश का संक्षेप में वर्णन करिये।

6.महाभारत के युद्ध का क्या परिणाम हुआ ?

7.कृष्ण को ईश्वर का अवतार क्यों माना जाता है ?

पाठ - ६

भीष्म

"पृथ्वी अपनी गंध को, अग्नि उष्णता (ताप) को, आकाश शब्द को, वायु स्पर्श को, जल आर्द्रता (नमी) को, चन्द्र शीतलता को, सूर्य तेज को, धर्मराज धर्म को छोड़ दें किन्तु भीष्म तीनों लोकों के राज्य या उससे भी महान सुख के लिए अपना व्रत नहीं छोड़ेगा ।" यह कथन उस महान दृढ़व्रती भीष्म का है जिसने अपने पिता के सुख के लिए आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की थी।

पंचतत्त्व-पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल, वायु।

पंचतत्त्व के गुण-गंध, शब्द, उष्णता, आर्द्रता, स्पर्श।

भीष्म हस्तिनापुर के महाराज शान्तनु एवं गंगा के पुत्र थे। कौरवों और पाण्डवों के पितामह होने के कारण इन्हें पितामह भी कहते हैं।

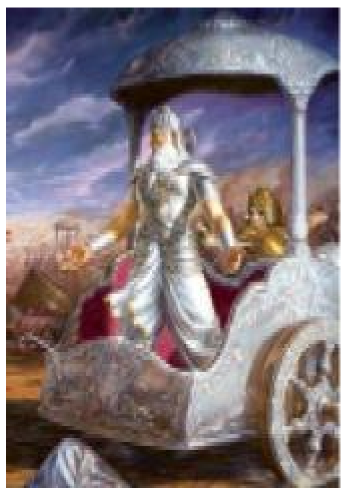

भीष्म के बचपन का नाम देवव्रत था। इन्होंने वेदशास्त्र की शिक्षा वशिष्ठ से प्राप्त की थी। युद्ध एवं शस्त्र विद्या की शिक्षा इन्हें परशुराम से मिली थी। ये शस्त्र और शास्त्र दोनों में अत्यन्त निपुण थे।

एक बार की बात है महाराज शान्तनु आखेट के लिए गए। शिकार करते-करते वह यमुना नदी के तट पर पहुँच गए। वहाँ वह एक परम सुन्दरी कन्या को देखकर उस पर मुग्ध हो गये। महाराज शान्तनु ने उस कन्या के पिता निषादराज से विवाह की इच्छा व्यक्त की।

निषादराज ने कहा-"मैं एक शर्त पर अपनी कन्या का विवाह आपसे कर सकता हूँ कि राजा की मृत्यु के पश्चात् मेरी कन्या का पुत्र गद्दी पर बैठेगा, देवव्रत नहीं ।" महाराज शान्तनु अपने पुत्र का यह अधिकार नहीं छीनना चाहते थे इसलिए वे हस्तिनापुर लौट आए।

धीरे-द्दीरे महाराज की दशा सोचनीय होती गई। देवव्रत ने पिता की चिंता का कारण पता किया और निषादराज से अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह अपने पिता से करने का अनुरोध किया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि-

''मैं शान्तनु पुत्र देवव्रत आज यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजीवन ब्रह्मचारी रहते हुए हस्तिनापुर राज्य की रक्षा करूँगा।" इस भीष्म प्रतिज्ञा के कारण देवव्रत का नाम भीष्म पड़ा।

तत्पश्चात् राजा शान्तनु का विवाह सत्यवती के साथ हो गया। सत्यवती के दो पुत्र हुए। एक का नाम था चित्रांगद तथा दूसरे का नाम था विचित्रवीर्य। शान्तनु की मृत्यु के पश्चात् सत्यवती का बड़ा पुत्र हस्तिनापुर का राजा हुआ किन्तु शीघ्र ही एक युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई। दूसरा पुत्र सिंहासन पर बैठा इसके तीन पुत्र थे-धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर। दुर्भाग्यवश वह भी थोड़े समय में काल-कवलित हो गया। अब कौन सिंहासन पर बैठे ? कोई दूसरा उत्तराधिकारी नहीं था । इसलिए सबने भीष्म से राज्य स्वीकार करने का आग्रह किया किन्तु भीष्म ने इसे अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा-

'मनुष्य की प्रतिज्ञा सींक नहीं है जो झटके से टूट जाया करती है। जो बात एक बार कह दी गई उससे लौटना मनुष्य की दुर्बलता है चरित्र की हीनता है।''

भीष्म के चरित्र की यह विशेषता थी कि जो प्रतिज्ञा कर लेते थे, उससे नहीं हटते थे। उनके जीवन में इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं । जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ तो भीष्म कौरवों की ओर थे। कृष्ण पाण्डवों की ओर थे। युद्ध के पूर्व कृष्ण ने कहा '' मैं अर्जुन का रथ हाँकूँगा, लड़ूँगा नहीं''। भीष्म ने प्रतिज्ञा की ''मैं कृष्ण को शस्त्र उठाने को विवश कर दूँगा।''

''आजु जौ हरिहि न शस्त्र गहाऊँ,
तौ लाजौं गंगा जननी को शान्तनु सुत न कहाऔं।"

अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए भीष्म ने इतना घोर संग्राम किया कि पाण्डव सेना व्याकुल हो उठी। श्री कृष्ण क्रोधित हो गए और अर्जुन का रथ त्यागकर रथ का पहिया उठाकर भीष्म की ओर दौड़े। भीष्म की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। श्री कृष्ण ने भी भीष्म के पराक्रम और युद्ध कौशल की अत्यधिक प्रशंसा की।

भीष्म अत्यन्त पराक्रमी थे । महाभारत के युद्ध में इन्होंने दस दिन तक अकेले सेनापति का कार्य किया। कोई भी ऐसा योद्धा नहीं था जो भीष्म के शौर्य को ललकार सके। '

'मैं शिखण्डी को सम्मुख देखकर धनुष रख देता हूँ।'' - अपनी मृत्यु का उपाय बताना भीष्म की उदारता थी। शिखण्डी स्त्रीरूप में जन्मा था। कोई सच्चा शूर नारी पर प्रहार कैसे कर सकता था ? अर्जुन ने शिखण्डी को आगे करके पितामह पर बाणों की वर्षा की। जब भीष्म रथ से गिरे, उनके शरीर का रोम-रोम बिंध चुका था। पूरा शरीर बाणों पर ही उठा रह

गया।भीष्म ने घायल अवस्था में ही सूर्य के उत्तरायण होने तक अपने प्राण न त्यागने की प्रतिज्ञा की।

सूर्य की किरणें एक वर्ष में 6 माह भूमध्यरेखा के उत्तर में तथा 6 माह भूमध्यरेखा के दक्षिण में लम्बवत् पड़ती है। सूर्य के भूमध्यरेखा के दोनों ओर स्थित रहने की इस दशा को सूर्य का उत्तरायण और दक्षिणायन कहा जाता है।

भीष्म पितामह प्रबल पराक्रमी होने के साथ-साथ महान राजनीतिज्ञ और धर्मज्ञ भी थे। शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म ने युधिष्ठिर को ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, धर्म एवं नीति का जो उपदेश दिया, वह महाभारत के शान्तिपर्व में संग्रहीत है।

भीष्म के समान दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति किसी भी देश और समाज को सदैव नई दिशा देते रहते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली -

1.काल-कवलित-मृत्यु के मुख में

2. शरशय्या-बाणों की शय्या

3.भीष्म- कठिन

अभ्यास

1.देवव्रत का नाम भीष्म क्यों पड़ा?

2.भीष्म के माता-पिता का क्या नाम था?

3.निषादराज ने शान्तनु के समक्ष कौन-सी शर्त रखी?

4.युद्धभूमि में भीष्म ने शस्त्र का त्याग कब और क्यों किया?

5.सही (√) अथवा गलत (ग्) का चिह्न लगाइए -

अ.भीष्म महाराज भरत के पुत्र थे।

ब.शान्तनु की मृत्यु के पश्चात् भीष्म हस्तिनापुर के राजा हुए।

स.भीष्म अपनी प्रतिज्ञा से कभी हटते न थे।

द.महाभारत के युद्ध में भीष्म पाण्डवों की ओर थे।

6.महाभारत के युद्ध में भीष्म ने घोर संग्राम किया क्योंकि वे-

क.अर्जुन को मारना चाहते थे।

ख.वह अपना पराक्रम दिखाना चाहते थे।

ग.कृष्ण को शस्त्र ग्रहण करवाकर उनकी प्रतिज्ञा भंग कराना चाहते थे।

घ.वह पाण्डवों का विनाश करना चाहते थे।

7.भीष्म पितामह के चरित्र के प्रेरक प्रसंगों को अपने शब्दों में लिखिए।

8.पाठ की किस घटना ने आपको प्रभावित किया और क्यों?

9.भीष्म के समान अपने वचन पर दृढ़ रहने वाले किसी महापुरुष के बारे में लिखिए।

पाठ - ७

महाराजा अग्रसेन

" बाहर से कोई व्यक्ति अग्रोहा में बसने आए तो प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य होगा कि वह स्वेच्छा से उस नवागन्तुक को एक मुद्रा और एक ईंट दे ताकि नया आने वाला व्यक्ति अग्रोहा राज्य में सुख-शान्ति से रह सके।"

-महाराजा अग्रसेन

हरियाणा राज्य में एक नगर है अग्रोहा। पहले यह अग्रोहा राज्य था। इस गणतांत्रिक राज्य के संस्थापक प्रजापालक और समाजसेवी राजा थे महाराज अग्रसेन। इनके राज्य में हिंसा को कोई स्थान नहीं था। उन्होंने यज्ञों में बलि का कार्य बन्द करा दिया था। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के सुख-दु:ख में समान रूप से सहयोगी था।

राजस्थान और हरियाणा राज्य के बीच में एक नदी बहती थी सरस्वती। इसी सरस्वती नदी के किनारे एक राज्य प्रताप नगर था। मांकिल ऋषि की परम्परा में धनपाल नाम के एक राजा हुए थे। धनपाल ने ही प्रताप नगर बसाया था। राजा धनपाल की छठीं पीढ़ी में महाराजा बल्लभ हुए। महाराजा बल्लभ के दो पुत्रों में एक अग्रसेन थे और दूसरे शूरसेन थे। युवावस्था में अग्रसेन शासन व्यवस्था देखते थे और शूरसेन सैन्य व्यवस्था देखते थे। अग्रसेन और शूरसेन में अटूट प्रेम था। अग्रसेन के जन्म के समय ऋषि गर्ग ने कहा था कि अग्रसेन बहुत बड़ा और तेजस्वी राजा बनेगा। यह एक नयी शासन व्यवस्था का निर्माण करने में भी सक्षम होगा।

अग्रसेन का विवाह नागराज कुमुद की पुत्री माधवी से हुआ। इसके अलावा महाराजा अग्रसेन ने कोलापुर के राजा महीरथ की पुत्री सुन्दरावती से भी विवाह किया था।

अग्रसेन की पत्नी माद्दवी के पिता कुमुद और सुन्दरावती के पिता महीरथ ने संकट की घड़ी आने पर अग्रसेन की मदद करने का आश्वासन दिया। उन्होंने कहा कि यह मात्र दो परिवारों का ही मिलन नहीं है, वरन् दो संस्कृतियों का मिलन है।

अग्रसेन द्वारा दो नागवंशों से सम्बन्ध स्थापित कर लेने के कारण उनका राज्य और ज्यादा समृद्धिशाली एवं मजबूत हो गया। उनकी प्रजा संतुष्ट थी।

मंदाकिनी नदी के किनारे बसे यक्ष राजा की पुत्री सुपात्रा का विवाह अग्रसेन के भाई शूरसेन से हो गया।

अग्रसेन के निमंत्रण पर इन्द्र स्वयं प्रताप नगर आए। इस अवसर पर प्रताप नगर को खूब सजाया गया। इन्द्र की अगवानी भी बड़े सम्मान पूर्वक की गई। अग्रसेन के पिता महाराजा बल्लभ का आसन, छत्र व चँवर इन्द्र के बराबर लगाया गया। अग्रवंशजों की शादी में छत्र व चँवर का प्रयोग उसी परम्परा के अनुसार आज भी किया जाता है ।

समय पूर्व अग्रसेन दक्षिणी राज्यों के भ्रमण पर पत्नियों सहित चले गए, तब वहाँ की व्यवस्था शूरसेन ने सँभाली।

महाराजा बल्लभ की मृत्यु के बाद पिण्डदान के लिए अग्रसेन अनेक तीर्थों के बाद गया पहुँचे। वहाँ से वह लोहागढ़ सीमा से निकल पंच नद (वर्तमान पंजाब) राज्य पहुँचे जो सरस्वती व यमुना नदी के किनारे था।

वहाँ एक स्थान पर सिंहनी अपने शावक के साथ खेल रही थी। अग्रसेन हाथी पर बैठे थे। वह शावक तेजी से उछला और हाथी के मस्तक पर जा बैठा। तभी उन्हें अपने पिता की बात याद आयी कि किसी वीरधरा पर एक नया राज्य बसाना है। अग्रसेन ने उस स्थान के विषय में विद्वानों से सलाह ली। सभी ने उस जगह को वीरभूमि, उर्वरा व श्रेष्ठ बताया ।

और यहीं नया राज्य आग्रेयगण (बाद में अग्रोहा) बसाया। इसकी राजधानी अग्रोदक थी। अग्रसेन यहीं के महाराजा बने और शूरसेन प्रतापनगर के राजा बने। कहा जाता है कि अग्रसेन ने 18 बस्तियाँ बसायीं। उनके राज्य की नीति 'जियो और जीने दो' पर आधारित थी। महाराजा अग्रसेन के राज्य में हिंसा व दुर्नीति के लिए कोई स्थान नहीं था।

सन्तान होने की प्रसन्नता में महर्षि गर्ग के कहने पर अग्रसेन ने अश्वमेध यज्ञ किया।

अश्वमेध में पशुबलि देने की परम्परा होने पर भी अग्रसेन ने पशुबलि नहीं होने दी । पशु बलि के स्थान पर श्री फल (नारियल) को ही उन्होंने यज्ञ की पूर्णाहुति का साधन बनाया। अपने राज्य में कहीं भी होने वाली पशु-बलि उन्होंने रुकवा दी।

उनके राज्य में हर व्यक्ति एक-दूसरे की मदद करने वाला था। बाहर से आने वाले व्यक्ति को एक मुद्रा और एक ईंट, प्रत्येक नागरिक को देने का आदेश था ताकि नवागंतुक का

जीवनयापन सुखपूर्वक व्यतीत हो सके। बाद में अग्रसेन ने गणतान्त्रिक व्यवस्था के अंतर्गत अन्य जनपदों में जन-प्रतिनिधियों की नयी व्यवस्था को जन्म दिया।

अश्वमेध यज्ञ में..........

तत्कालीन राजा अपनी सत्ता का प्रभाव सबको मानने के लिए एक यज्ञ करता है। यज्ञ के बाद एक घोड़ा छोड़ा जाता है। वह विभिन्न स्थानों से होता हुआ फिर वहीं वापस आता है। यदि कोई व्यक्ति उस घोड़े को पकड़ लेता था, तो उससे युद्ध करना पड़ता था।

अश्वमेध यज्ञ के बाद लम्बी अवधि तक महाराजा अग्रसेन ने राज्य किया। तत्पश्चात् अपने पुत्र विभु को शासन व्यवस्था सौंपकर दोनों महारानियों सहित वनवास ग्रहण कर लिया।

महाराजा अग्रसेन की स्मृति में..........

1.भारत सरकार ने उनके अहिंसक, लोकतंत्रात्मक एवं भाई चारे की शासन व्यवस्था के कारण उनकी स्मृति में 24 सितम्बर 1976 को 25 नये पैसे का डाक टिकट जारी किया।

2.दिल्ली से अग्रोहा होकर पाकिस्तान सीमा तक जाने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग 10 का नाम भी महाराजा अग्रसेन राष्ट्रीय राजमार्ग घोषित किया गया।

3.25 जनवरी 1995 को दक्षिण कोरिया से खरीदे गए एक लाख दस हजार टन की क्षमता वाले तेल वाहक जलपोत का नाम महाराजा अग्रसेन के नाम पर रखा गया है।

4.दिल्ली सरकार ने भी एक महाविद्यालय का नाम महाराजा अग्रसेन के नाम पर किया है।

5.दिल्ली से मुम्बई एवं बंगलौर (बंगलुरु) होते हुए कन्याकुमारी तक जाने वाले नेशनल हाईवे क्रमांक एक का नाम महाराजा अग्रसेन के नाम पर रखा गया है।

अभ्यास

1.'एक मुद्रा और एक ईंट' से क्या तात्पर्य है?

2.महाराजा अग्रसेन ने यज्ञों में होने वाली किस प्रथा को रुकवा दिया था? इसके स्थान पर क्या प्रथा प्रचलित करायी?

3.सही विकल्प चुनिए-

(अ)अश्वमेध यज्ञ में कौन सा पशु विश्व विजय के प्रतीक स्वरूप छोड़ा जाता था?

(1) बैल (2) घोड़ा (3) भैंसा (4) गधा ।

(ब) महाराजा अग्रसेन ने कौन-सा नया नगर बसाया था ?

(1) गंगोहा (2) अग्रोहा (3) वैदेहा (4) सोरहा

4.खाली स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(अ)महाराजा अग्रसेन के राज्य में ....का कोई स्थान नहीं था। (न्याय, हिंसा, सम्पत्ति, सुख)

(ब)अग्रोहा स्थान वर्तमान में.......................राज्य में है। (दिल्ली, राजस्थान, महाराष्ट्र, हरियाणा)

(स)अग्रवंशजों के विवाह में ....के प्रयोग की आज भी परम्परा है। (छत्र व दण्ड, छत्र व चँवर, चँवर व दण्ड, छत्र व मुकुट)

5.स्वयं कीजिए-

1.ऐसे डाक टिकटों का संग्रह कीजिए जो महापुरुषों की स्मृति में जारी किए गए।

2.अपने शिक्षक/शिक्षिका से पता कीजिए-

- राष्ट्रीय राजमार्ग किसे कहते है ?
- गणतंत्र का क्या तात्पर्य है ?

पाठ - ८

महावीर स्वामी

छठीं शताब्दी ईसा पूर्व तक भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में नाना प्रकार की बुराइयाँ उत्पन्न हो गयी थीं। भारतीय समाज में ऊँच-नीच की भावनाओं का बोलबाला था। समाज वर्णों, जातियों और उपजातियों में विभक्त हो गया था जिससे सामाजिक जीवन में पारस्परिक भेद-भाव बढ़ता जा रहा था। समाज में नाना प्रकार के धार्मिक अन्धविश्वास और कुरीतियाँ प्रचलित थीं। प्रचलित कर्मकाण्ड तथा जातिवाद की जकड़ के प्रति लोगों के मन में पर्याप्त असन्तोष था। जन साधारण ऐसे वातावरण की घुटन से छुटकारा पाने के लिए बेचैन था। इस समस्या को उस समय के कुछ युग-पुरुषों ने समझा और अपना सुधारवादी मत लोगों के सामने रखा। इन महापुरुषों की ओर जनसमुदाय आकर्षित हुआ। कुछ समय में इन मतों ने धार्मिक आन्दोलन का रूप ले लिया। इन्हीं मतों में से एक था-जैन मत। महावीर स्वामी अपने समय में जैन मत के सर्वश्रेष्ठ प्रचारक और प्रवर्तक थे।

महावीर स्वामी के बचपन का नाम वर्द्धमान था। उनका जन्म ईसा से 599 वर्ष पूर्व वैशाली (उत्तरी बिहार) के अन्तर्गत कुन्डग्राम में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ तथा माता का नाम त्रिशला देवी था। वर्द्धमान बाल्यकाल से ही बुद्धिमान, सदाचारी और विचारशील थे। युवा वर्द्धमान जीवन-मरण, कर्म, संयम आदि प्रसंगों पर सदैव सोचते तथा विचार-विमर्श करते रहते थे। वर्द्धमान का मन घर पर नहीं लगता था। वह बचपन से ही अत्यन्त गम्भीर रहते थे। नाना प्रकार के सांसारिक सुख होते हुए भी उनकी आत्मा में बेचैनी थी। समाज में प्रचलित आडम्बर, ऊँच-नीच की भावना, चरित्र-पतन तथा जीव हत्या उनकी वेदना के मुख्य कारण थे। यज्ञ के नाम पर पशुओं की हत्या करना वर्द्धमान को असह्य था। इसी बीच वर्द्धमान के माता-पिता का देहान्त हो गया।

इससे वर्द्धमान को अत्यन्त दुःख हुआ। सांसारिक मोह माया को त्याग कर वर्द्धमान ने अपने अग्रज नन्दिवर्द्धन की आज्ञा लेकर संन्यास ले लिया। इस समय उनकी आयु 30 वर्ष

थी। वह सत्य और शान्ति की खोज में निकल पड़े। इसके लिए उन्होंने तपस्या का मार्ग अपनाया। उनका विचार था कि कठोर तपस्या से ही मन में छिपे काम, क्रोध, लोभ, मद तथा मोह को समाप्त किया जा सकता है। 12 वर्ष की कठिन तपस्या के पश्चात् उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। कठोर तपस्या के कष्टों को सफलतापूर्वक झेलने तथा इन्द्रियों को अपने वश में कर लेने के कारण वे ‘‘महावीर’’ या ‘‘जिन’’ कहलाने लगे। इन्होंने जिस धर्म का प्रचार किया वह जैन धर्म के नाम से जाना जाता है।

जैनियों की मान्यता के अनुसार जैन धर्म में महावीर से पूर्व 23 तीर्थंकर हुए हैं। महावीर इस धर्म के अन्तिम तीर्थंकर थे। तीर्थंकर का अर्थ है-दुःख जीतने के पवित्र मार्ग को दिखाने वाला। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् महावीर स्वामी 30 वर्ष तक अपने धर्म का प्रचार बड़े उत्साह से करते रहे। वे वर्ष में आठ महीने घूम-घूम कर जन साधारण के बीच अपने मत का प्रचार किया करते थे और वर्ष के चार महीने किसी नगर में व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे भारत के सम्पूर्ण राज्यों में जैन धर्म का प्रसार हो गया। महावीर स्वामी अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक जन-जन को दीक्षित करते रहे।

जैन धर्म के ‘‘त्रिरत्न’’ यह हैं- सम्यक् दर्शन (सही बात पर विश्वास), सम्यक् ज्ञान (सही बात को समझाना) तथा सम्यक् चरित्र (उचित कर्म)।

महावीर स्वामी के उपदेशों, उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों, विधानों का जन-मानस पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। उनके समय में उत्तरी भारत में तो इस धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु कई केन्द्रों की स्थापना भी हो गई थी। सामान्यजनों के अतिरिक्त बिम्बिसार तथा उसके पुत्र अजातशत्रु जैसे राजा भी महावीर स्वामी के उपेदशों से प्रभावित हुए।

महावीर स्वामी के उपदेश हमें जीवों पर दया करने की शिक्षा देते हैं। उन्होंने मानव समाज को एक ऐसा मार्ग बताया जो सत्य और अहिंसा पर आधारित है और जिस पर चलकर मनुष्य आज भी बिना किसी को कष्ट दिये हुए मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

72 वर्ष की आयु मंे महावीर स्वामी पाटलिपुत्र (पटना) के निकट पावापुरी में जाकर ध्यान में लीन हो गए और यहीं उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।

अभ्यास-प्रश्न

1.महावीर स्वामी का जन्म कब हुआ ? इनके माता-पिता कौन थे ?

2.महावीर स्वामी के बाल जीवन के क्या अनुभव थे ?

3.इन्हें महावीर क्यों कहा जाने लगा ?

4.महावीर स्वामी किस धर्म के प्रचारक थे ?

5.जैन धर्म की मुख्य बातों का संक्षेप में वर्णन करिये।

पाठ - ९

चन्द्रगुप्त मौर्य

उस समय यूनानी सम्राट सिकन्दर अपनी विजय-पताका फहराकर भारत से लौट चुका था। सिन्ध, पंजाब तथा सीमा प्रदेश का शासन उसने अपने यूनानी अधिकारियों के हाथ में दे रखा था। विदेशी अधिकारियों का शासन अत्याचारपूर्ण था। प्रजा अत्यन्त दःुखी और असन्तुष्ट थी। सिकन्दर के आक्रमण का विरोध करने में भारतवासी सफल भले ही न हो सके थे लेकिन उनके मन में अपने देश को स्वतन्त्र कराने की इच्छा बराबर बनी रहती थी। यूनानी अधिकारियों के अत्याचार से विरोध की यह आग और भी भड़क उठी। उनको आवश्यकता थी तो केवल एक ऐसे नायक की, जो इन्हें दिशा निर्देश दे सके और उनका पथ प्रदर्शक बन सके। संयोगवश चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे साहसी और महत्त्वाकांक्षी युवक का इन्हें नेतृत्व मिल गया।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने भारत भूमि की रक्षा के लिए अपने प्राण न्योछावर करने वालों को संगठित कर एक सेना का निर्माण किया। सेना की सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानियों को भारत भूमि से बाहर निकाल दिया और अपनी राजसत्ता स्थापित की। इस विजय से चन्द्रगुप्त मौर्य में विश्वास और उत्साह का जन्म हुआ। फलस्वरूप उसने एक विशाल सेना संगठित की और मगध साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में चन्द्रगुप्त मौर्य को विजय प्राप्त हुई। मगध का शासक नन्दराजा घनानन्द युद्ध मंे मारा गया और चन्द्रगुप्त मौर्य मगध की राजधानी पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने उत्तर भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के पश्चात् यह अनुभव किया कि सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में बाँधने के लिए दक्षिण भारत पर भी विजय प्राप्त करना आवश्यक है। धीरे-धीरे बंगाल तथा मालवा आदि पर चन्द्रगुप्त ने अपना अधिकार कर लिया। चन्द्रगुप्त मौर्य का अन्तिम संघर्ष सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस के साथ हुआ। यूनानी और भारतीय सेना में घमासान युद्ध हुआ जिसमें चन्द्रगुप्त की विजय हुई। अपनी पराजय मानकर सेल्यूकस को चन्द्रगुप्त से सन्धि करनी पड़ी। सन्धि को सुदृढ़ बनाने के लिए सेल्यूकस ने अपनी पुत्री का विवाह भी चन्द्रगुप्त मौर्य से कर दिया और मेगस्थनीज नामक एक राजदूत भी चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजा। चन्द्रगुप्त ने भी सेल्यूकस को 500 हाथी उपहार स्वरूप दिए। इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य पश्चिम में मध्य एशिया से पूर्व मंे बंगाल तक और उत्तर में हिमालय पर्वत से दक्षिण में कृष्णा नदी तक फैल गया। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने बाहुबल और अदम्य साहस से भारत में राजनीतिक एकता स्थापित की।

जैन जनश्रुति के अनुसार चन्द्रगुप्त एक ऐसे गाँव के प्रधान की कन्या के पुत्र थे जहाँ मयूर-पोषक निवास करते थे। इस कारण उनका वंश मौर्य वंश कहलाया। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार नेपाल की तराई में पिप्पलिवन नामक एक स्थान था। यहाँ क्षत्रिय जाति के लोग निवास करते थे, इन्हें ''मौरिय'' कहा जाता था। चन्द्रगुप्त के पिता इसी जाति के प्रधान थे, जिनकी किसी शक्तिशाली राजा द्वारा हत्या कर दी गयीं थी। अपने पुत्र को सुरक्षित रखने के लिए इसकी माता अपने सम्बन्धियों के साथ कहीं अन्यत्र चली गयीं और राजवंश को गुप्त रखा। कालान्तर में कौटिल्य नामक ब्राह्मण की सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य की शिक्षा-दीक्षा पूरी हो सकी।

चन्द्रगुप्त मौर्य के विशाल साम्राज्य का शासन प्रबन्ध अत्यन्त संगठित था। उसने जिस शासन प्रणाली को अपनाया वह भारत के भावी शासकों के लिए आदर्श बन गई। शासन व्यवस्था मुख्यतः तीन भागों में विभक्त थी- केन्द्रीय शासन, प्रान्तीय शासन और स्थानीय शासन। शासन की सर्वोच्च शक्ति सम्राट के हाथ में थी लेकिन प्रजा का अधिक से अधिक कल्याण करने के उद्देश्य से मन्त्रियों, परामर्शदाताओं तथा अन्य पदाधिकारियों की व्यवस्था थी। शासन विभिन्न विभागों द्वारा चलाया जाता था। प्रत्येक विभाग का प्रमुख ''अमात्य'' कहा जाता था। आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था के लिए पुलिस का प्रबन्ध था। पुलिस के सिपाही को ''रक्षिन्'' कहा जाता था।

चन्द्रगुप्त मौर्य अपनी प्रजा की उन्नति के प्रति सदैव प्रयत्नशील रहता था। उसने यातायात के साधनों की समुचित व्यवस्था की। सड़कांे के किनारे छायादार वृक्ष लगवाये, कुएँ तथा धर्मशालाएँ बनवायीं। सिंचाई हेतु अनेक तालाब और कुएँ खुदवाए। उस समय उसके साम्राज्य की 'सुदर्शन झील' बहुत प्रसिद्ध थी। रोगियों की चिकित्सा के लिए अनेक औषधालय खुले थे। भोजन सामग्री की शुद्धता की जाँच हेतु निरीक्षक थे। शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार हेतु उसने शिक्षालयों की स्थापना की। शिक्षा व्यवस्था का दायित्व सीधे प्रधानमंत्री का था।

यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक ''इण्डिका'' में चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी पाटलिपुत्र का बड़ा विशद् वर्णन किया है। इस काल में भारत का बहुमुखी विकास हुआ। कृषि, व्यापार एवं ललित कला आदि के सम्यक् विकास हेतु शासन द्वारा अनेक सुविधाएँ दी जाती थीं। उस समय प्रजा की नैतिकता उच्चकोटि की थी। उस काल की शासन व्यवस्था वस्तुतः एक आदर्श थी। लगभग 24 वर्ष राज्य का सफल संचालन करने के पश्चात् सम्राट चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र युवराज बिन्दुसार को शासन का कार्यभार सौंप दिया और स्वयं कुछ वर्ष साधक के रूप में जीवन व्यतीत करने हेतु जैन मुनि भद्रवाहु के साथ चन्द्रगिरि पर्वत पर रहे। यहीं 298 ई0 पू0 में उनका निधन हो गया।

अभ्यास-प्रश्न

1.चन्द्रगुप्त मौर्य कौन था ?

2.उसने अपनी सेना का संगठन किस प्रकार किया ?
3.मगध की राजधानी का क्या नाम था ?
4.चन्द्रगुप्त मौर्य ने प्रजा के हित के लिए क्या-क्या कार्य किए ?
5.चन्द्रगुप्त मौर्य जीवन के अन्तिम क्षणों में कहाँ और क्यों गए ?

पाठ - १०

आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान

हमारे देश में अनेक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने न केवल भारत वरन् विश्व के अन्य देशों में भी अपने ज्ञान का प्रकाश फैलाया है। आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान उनमंे से एक हैं।

आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान का जन्म सन् 982 ई0 में सहोर (बंगाल) में हुआ था। सहोर प्राचीन काल में विक्रमपुर राज्य के अन्तर्गत प्रसिद्ध नगर था। विक्रमपुर के राजा कल्याण के तीन पुत्र थे-पद्मगर्भ, चन्द्रगर्भ और श्रीगर्भ। द्वितीय पुत्र चन्द्रगर्भ ही आगे चलकर दीपंकर श्रीज्ञान के नाम से प्रसिद्ध हुए। पाँच वर्ष की अवस्था में ही बालक चन्द्रगर्भ में प्रतिभा के अंकुर फूटने लगे थे। इस छोटी अवस्था में ही संस्कृत श्लोकों का शुद्ध वाचन करने एवं उनका अर्थ कहने की क्षमता उनमंे आ गयी थी।

राजकुमार चन्द्रगर्भ में बचपन से ही सांसारिक वैभव के प्रति कोई लगाव नहीं था। बीस वर्ष की अवस्था में पिता ने उनका विवाह करने का निश्चय किया, किन्तु उन्होंने इनकार कर दिया। सब लोगों ने उन्हें सिंहासन सौंपने का निर्णय लिया, किन्तु दीपंकर श्रीज्ञान ने उसे भी अस्वीकार कर दिया।

उन्तीस वर्ष की अवस्था तक कुमार चन्द्रगर्भ ने अनेक सिद्ध महात्माओं के साथ रहकर व्याकरण, तर्कशास्त्र, ज्योतिष, चिकित्सा एवं बौद्ध दर्शन का गहन अध्ययन किया। ज्ञान की सभी शाखाओं का अध्ययन करके उन्होंने महापंडित की उपाधि प्राप्त की। इसी समय वज्रासन महाविहार (बुद्ध गया) में उन्हें ‘‘दीपंकर श्रीज्ञान’’ के नाम से विभूषित किया गया। बुद्ध मत के अन्तर्गत ‘‘दीपंकर’’ का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। महात्मा बुद्ध भी इस नाम से जाने जाते थे।

अध्ययन पूरा कर लेने के बाद आचार्य दीपंकर ने भारत के तत्कालीन अनेक विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य किया। जिन दिनों ये विक्रमशिला में महापंडित के पद पर कार्य कर रहे थे, उन्हीं दिनों तिब्बत के महाराजा की आज्ञा से नग-छो-लोचापा नामक एक व्यक्ति दीपंकर को अपने देश तिब्बत ले जाने के लिए आया। उस समय विक्रमशिला में अनेक प्रसिद्ध आचार्य थे, किन्तु दीपंकर श्रीज्ञान उनमें विश्ोष प्रसिद्ध थे। वे एक महान आचार्य तो थे ही, उसमें कई अन्य गुण भी विद्यमान थे। शिष्यों के प्रति उनमें अपार स्नेह और मानव सेवा की प्रगाढ़ भावना थी। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के छात्र उनकी अमृत तुल्य वाणी से विशेष प्रभावित थे।

महाराजा के आमन्त्रण को स्वीकार कर दीपंकर श्रीज्ञान को तीन वर्ष के लिए तिब्बत जाने की अनुमति दे दी गयी। उस समय दीपंकर श्रीज्ञान उनसठ वर्ष के थे। वे नेपाल होते हुए

डबरी नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ वे तीन वर्ष तक रहे। वहीं पर उन्होंने अनेक पांडित्यपूर्ण रचनाएँ कीं। ''बोधिपथ प्रदीप'' ग्रन्थ की रचना यहीं की गयी थी। उसके बाद वे भारत वापस आना चाहते थे किन्तु नेपाल की सीमा पर लड़ाई छिड़ जाने के कारण वे अपने देश नहीं लौट सके।

इसी समय उन्हें केन्द्रीय तिब्बत में आने के लिए आमन्त्रित किया गया। इस क्षेत्र में वे कई वर्षों तक बौद्ध मत का प्रचार-प्रसार करते रहे।

तिब्बत में यह बौद्ध मत के नव जागरण का काल था। तिब्बत प्रवास के समय दीपंकर श्रीज्ञान ने महात्मा बुद्ध के उपदेशों को वहाँ की जनता तक पहुँचाया। उन्होंने बौद्ध मत से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना एवं अनेक अनुवाद किए। बौद्ध विहारों एवं भिक्षुशालाओं का निरीक्षण करके उनके सुधार हेतु उन्होंने अपने सुझाव दिये। बौद्धमत के पुनर्गठन में उनका बहुत बड़ा योगदान रहा। इस प्रकार दीपंकर श्रीज्ञान पन्द्रह वर्षों तक तिब्बत में अपने ज्ञान का प्रकाश फैलाते रहे। तिहत्तर वर्ष की अवस्था में वहीं उनका निधन हो गया।

तिब्बत में दीपंकर श्रीज्ञान को बौद्ध मत से सम्बन्धित ऐसे गं्रथों की पाण्डुलिपियाँ मिलीं, जो भारत में दुर्लभ थीं। दीपंकर श्रीज्ञान ने इन ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने संस्कृत, बंगला और तिब्बती भाषा में सौ से अधिक ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से 96 ग्रन्थ आज भी सुरक्षित हैं। ये ग्रन्थ उनकी प्रतिभा, विद्वता और अध्ययनशीलता के परिचायक हैं।

आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान के उपदेशों में मानव सेवा और भाईचारे का सन्देश भरा हुआ है। उनसे हमें ज्ञानार्जन की प्रेरणा भी मिली है। ''बोधिपथ प्रदीप'' में उन्होंने पुरुषों को तीन प्रकार का बताया है- अधम, मध्यम और उत्तम। इनके लक्षणों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि जो लोग किसी भी प्रकार दूसरों को धोखा देकर, कष्ट पहुँचाकर, भ्रष्ट तरीकों से सांसारिक सुख पाना चाहते हैं वे अधम पुरुष हैं। संसार के दुःखों से विमुख रहकर या कर्म से दूर रहकर भी केवल अपने निर्वाण की कामना करने वाले पुरुष मध्यम कोटि में आते हैं किन्तु जो लोग अपने बच्चों के दुःखों की तरह ही संसार के अन्य सभी लोगों के दुःखों का सर्वथा नाश करना चाहते हैं, वही उत्तम पुरुष हैं।

इस प्रकार आचार्य ने सारी मानवता की सेवा एवं उसको सुखी बनाने के प्रयत्न में लगे हुए व्यक्ति को ही उत्तम कोटि का पुरुष माना है। केवल अपने सुख एवं अपने निर्वाण की कामना करने वाले लोगों की गणना उन्होंने अधम और मध्यम प्रकार के पुरुषों में की है।

तिब्बत में दीपंकर श्रीज्ञान को लोग बड़ी श्रद्धा से याद करते हैं। चीन, जावा, सुमात्रा, बर्मा (म्याँमार) आदि देशों में उनकी पावन स्मृति आज भी सजीव बनी हुई है। भारतीय जनमानस में उनकी स्मृति को संजोने के लिए भारत तथा बांग्लादेश में 1983 ई0 में दीपंकर श्रीज्ञान के जन्म की सहस्राब्दी बड़े उत्साह के साथ मनायी गयी।

आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान शान्ति, सद्भाव और आपसी सहयोग के प्रतीक थे।

अभ्यास-प्रश्न

1.राजकुमार चन्द्रगर्भ ने राजसिंहासन को क्यों नहीं स्वीकार किया ?
2.तिब्बत जाने के पूर्व आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान किस विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करते थे?
3.तिब्बत प्रवास के समय दीपंकर श्रीज्ञान ने कौन-कौन से कार्य किए थे ?
4.'बोधिपथ प्रदीप' में मध्यम कोटि के पुरुषों के क्या लक्षण बताये गए हैं ?
5.सही मिलान कीजिए-
(क) आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान ने(क) लोग बड़ी श्रद्धा से याद करते हैं।
(ख) तिब्बत में दीपंकर श्रीज्ञान को(ख) 'बोधिपथ प्रदीप' की रचना की।
6.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-
जो लोग अपने बच्चों के .... की तरह ही संसार के अन्य सभी लोगों के दुखों का सर्वथा
.... चाहते हैं, वही .... पुरुष हैं।

पाठ - ११

मीराबाई

मेवाड़ के जागीरदार रतन जी के घर एक साधु महाराज आकर ठहरे। उनके पास श्रीकृष्ण की एक सुन्दर मूर्ति थी। रतन जी की पुत्री को वह मूर्ति बहुत पसंद आयी। उन्होंने साधु से मूर्ति माँगी, पर साद्दु ने मना कर दिया। वह नन्हीं सी बच्ची मूर्ति पाने के लिए हठकर बैठी और खाना-पीना छोड़ दिया। रात को साधु को स्वप्न दिखा कि यह मूर्ति बालिका को दे दो। आखिरकार विवश होकर साधु ने वह मूर्ति उस बच्ची को दे दी। मूर्ति को पाकर बच्ची बहुत प्रसन्न हुई और श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त बन गई।

बड़ी होकर यही बच्ची मीरा श्रीकृष्ण की श्रेष्ठ उपासिका के रूप में प्रसिद्ध हुई। मीराबाई का जन्म सन् 1498 ई0 में राजस्थान में हुआ था । मीराबाई मेवाड़ के रतनसिंह राठौर की एक मात्र कन्या थीं। मीराबाई के पिता का नाम रतन जी था। बचपन में ही मीराबाई की माता की मृत्यु हो गई। अतः मीरा का पालन-पोषण उनके दादा रावदूदा जी ने किया। रावदूदा जी वैष्णव भक्त थे। उनका अधिकांश समय भगवान की उपासना में बीतता था। मीरा पर अपने दादा के विचारों और क्रियाओं का प्रभाव पड़ा और यहीं से उनमें भक्ति भावना जाग्रत हुई।

मीराबाई का विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र महाराज कुँवर भोजराज से हुआ। दोनों सुखी जीवन बिताने लगे। वे सदा पति की सेवा में लगी रहती थीं। विवाह के बाद भी उनकी उपासना में कमी नहीं आई। मीरा की भक्ति से इनके पति भी प्रसन्न रहते थे। दुर्भाग्यवश विवाह के केवल दस वर्ष बाद ही इनके पति का स्वर्गवास हो गया। इससे

मीराबाई के जीवन में बड़ा परिवर्तन आया। पति की मृत्यु के बाद वे श्रीकृष्ण की पूजा और आराधना में और भी लीन रहने लगीं। इनकी भक्ति की चर्चा सुनकर दूर-दूर से साधु-संत इनके दर्शन के लिए आने लगे। भजन गाते हुए कभी-कभी ये भक्ति में भाव-विह्वल होकर नाचने लगतीं। संतों की मण्डली भी इनके साथ भक्ति-भाव में डूबकर नाचने लगती। मीराबाई के ससुराल वालों को यह बात पसंद नहीं थी। मीराबाई की सास और ननद ऊदा को उनका रहन-सहन पहले से ही अच्छा नहीं लगता था। वे मीराबाई से द्वेष रखती थीं। पति की मृत्यु के बाद उनके छोटे-भाई राणा विक्रम सिंह ने मीराबाई को तरह-तरह से कष्ट दिए परन्तु परिवार द्वारा जितना अधिक विरोध किया गया मीराबाई का श्रीकृष्ण के प्रति लगाव उतना ही बढ़ता गया। मीराबाई के एक पद से ऐसा आभास होता है कि उन्हें जान से मारने के लिए विष भी दिया गया परन्तु उन पर विष का कोई प्रभाव न हुआ।

"विष का प्यालो राणा जी भेज्यो पीवत मीरा हाँसी रे।
मैं तो अपने नारायण की आप ही हो गई दासी रे ।।

मीराबाई बहुत निर्भीक महिला थीं। रूढ़िवादी राजपरिवार की वधू होने के बावजूद उन्होंने अपनी भक्ति और आदर्शों के लिए गलत परम्पराओं को तोड़ा। वे परिवार वालों के दुर्व्यवहार से दुखी होकर वृन्दावन और बाद में द्वारिका चली गईं। उन्होंने अपना शेष जीवन भक्तों की भाँति व्यतीत किया। उनके द्वारिका पहुँचने पर पूरी द्वारिका नगरी भक्ति-संगीत से सराबोर हो गई। जब मीराबाई श्रीकृष्ण के प्रेम में तल्लीन होकर अपनी रचनाएँ गातीं तो सम्पूर्ण नगरवासी उनके साथ मगन होकर गाने, नाचने लगते। मीरा रोज द्वारिकाधीश के मन्दिर के दर्शन करतीं। अपने गिरिधर गोपाल के प्रति मीरा का प्रेम व भक्ति दिनों दिन बढ़ती गई। अपने जीवन के अन्तिम समय तक वे द्वारिका में ही रहीं। यहीं उनका देहावसान हुआ।

"हे री ! मैं तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जानै कोय।।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होय।
गगन मंडल पर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय ।।"

मीराबाई में अभूतपूर्व काव्य क्षमता थी। उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा, राजस्थानी, गुजराती भाषा के शब्द मिलते हैं। वस्तुतः उन्होंने काव्य रचना करने के उद्देश्य से यह पद नहीं लिखे बल्कि अपने मन के भावों को सीधे सरल शब्दों में व्यक्त किया है। कहते हैं जो बात हृदय से निकलती है वह हृदय पर सीधा प्रभाव डालती है। यही कारण था कि मीरा के पदों ने जन-जन को प्रभावित किया और उनके पद हर एक की जुबान पर चढ़ गए। उनके जीवनकाल में ही उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी। मीराबाई ने उस समय के किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं रखा बल्कि अपनी निजी साधना को ही प्रधानता दी। मीरा की उपासना 'माधुर्य भाव' की थी। उनके पद पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि वे श्रीकृष्ण को पति रूप में पूजती थीं। उनका बहुत प्रसिद्ध पद है-

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।।

उनकी कविताएँ भगवान कृष्ण के प्रति उनके अनन्य प्रेम का उद्गार हैं। मीराबाई ने उच्चकोटि की भक्ति साधना से केवल अपना ही कल्याण नहीं किया अपितु समाज, साहित्य और देश का भी कल्याण किया है। उन्होंने सम्पूर्ण समाज को गौरवान्वित किया। उनके पद हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. बचपन में मीराबाई पर उनके दादा जी का क्या प्रभाव पड़ा ?
2.मीराबाई श्रीकृष्ण को किस रूप में पूजती थीं ?
3.मीराबाई के ससुराल वाले मीरा से क्यों अप्रसन्न थे ?
4.मीराबाई के पदों ने जन सामान्य को अधिक प्रभावित क्यों किया ?
5.सही कथन के सामने (√) का निशान तथा गलत कथन के सामने (ग्) का निशान लगाइए-

अ.पति की मृत्यु के बाद मीराबाई का मन कृष्ण भक्ति में नहीं लगता था।
ब.मीराबाई के ऊपर अपने दादा जी के संस्कारों का बहुत प्रभाव पड़ा।
स.राणा विक्रम सिंह ने मीरा को तरह-तरह के कष्ट दिये।
द.मीराबाई का देहावसान जटापुर में ही हुआ।
य.मीराबाई की रचनाओं में ब्रजभाषा, राजस्थानी, गुजराती भाषा के शब्द मिलते हैं ।

6.निम्नलिखित पदों को पूरा कीजिए-

क.विष का प्यालो ....
ख.मेरे तो गिरधर गोपाल ....
....

7.सही मिलान कीजिए-

क.मीराबाई मेवाड़ के रतन सिंह राठौर कीक. राजस्थानी व गुजराती भाषा के शब्द मिलते हैं।
ख.मीराबाई की रचनाओं में ब्रजभाषाख. एक मात्र कन्या थीं।

8.अपनी पाठ्यपुस्तक अथवा अन्य पुस्तकों से मीरा के पद ढूँढ़कर लिखिए।

पाठ - १२

अकबर महान

अकबर का जन्म अमरकोट के राजा वीसाल के महल में 15 अक्टूबर 1542 ई0 को हुआ था।

अकबर का बचपन बड़े ही संघर्ष के मध्य व्यतीत हुआ। कई बार तो उन्हें अपनी माता हमीदाबानो तक से अलग हो जाना पड़ा और भाग्य के सहारे जीवित रहना पड़ा लेकिन बाल्यावस्था की मुसीबतों ने उन्हें अत्यन्त निर्भीक और साहसी बना दिया था। जब वह पाँच वर्ष के हुए तो उनकी पढ़ाई-लिखाई की उचित व्यवस्था की गयी। उनका मन खेल-कूद, घुड़सवारी, तलवार चलाने, हाथियों की लड़ाई आदि देखने में अधिक लगता था।

बीस वर्ष की आयु प्राप्त होने तक अकबर ने एक उदार मुगल शासक के रूप में यश प्राप्त कर लिया। मध्यकाल में यह प्रथा थी कि जो सैनिक युद्ध में पकड़े जाते थे उन्हें गुलाम बनाकर रखा जाता था। अकबर ने इस प्रथा को समाप्त कर दिया। शासन के कुछ ही वर्षों बाद उसने तीर्थ-स्थानों की यात्रा करने वाले यात्रियों पर लगाये जाने वाले यात्री कर को भी उठा लिया। अकबर को अपनी प्रजा के मध्य विभिन्न सम्प्रदायों में मतभेद पसन्द नहीं था। इसलिए प्रजा में एकता और समानता का भाव उत्पन्न करने की भावना से ही उसने "जजिया-कर" को भी समाप्त कर दिया था। यह कर सभी गैर मुसलमानों को अदा करना पड़ता था।

अकबर धर्म के मामलों में बहुत उदार था। अपने राज्य में उसने सभी धर्मों के लोगों को अपना-अपना धर्म पालन करने की पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी। वह देश में केवल राजनीतिक एकता ही नहीं स्थापित करना चाहता था बल्कि सांस्कृतिक एवं धार्मिक सद्भाव भी कायम करना चाहता था। इसी से प्रेरित होकर उसने दीन-ए-इलाही नामक एक नया धर्म चलाया, जिसमें सभी धर्मों की अच्छी बातों को ग्रहण किया गया था। यह धर्म रूढ़ियों पर आधारित न होकर तर्क पर आधारित था।

उसका दरबार विद्वान और कलाकारों का केन्द्र था। राज्य भाषा फारसी थी। इसी समय फारसी भाषा में मौलिक रचनाएँ की गयीं तथा दूसरी भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रन्थों का अनुवाद भी फारसी में किया गया। बहुत से भारतीय तथा विदेशी कवि अकबर के दरबार में रहते थे। अबुल फजल द्वारा लिखित ''आइने-अकबरी'' में अकबर के द्वारा सहायता प्राप्त उनसठ कवियों का उल्लेख है। उस समय की फारसी भाषा की श्रेष्ठ रचनाओं में अबुल फजल का ''अकबरनामा'', आइने अकबरी, निजामुद्दीन की ''तबक़ाते अकबरी'', गुलबदन बेगम का ''हुमायूँनामा'' आदि प्रसिद्ध हैं। अबुल फैजी भी फारसी का श्रेष्ठ कवि था।

अकबर का शासन काल हिन्दी पद्य का स्वर्ण युग था। इसी समय हिन्दी के उच्च कोटि के काव्य ग्रन्थों की रचना हुई। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास, सूरदास, रहीम, रसखान, बीरबल थे। उस समय की प्रसिद्ध हिन्दी रचनाओं में रामचरित मानस और सूरसागर हैं। कुछ मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी में रचनाएँ कीं। इसमें रहीम जिनका वास्तविक नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था, का नाम सबसे ऊपर है जो फारसी, अरबी, तुर्की तथा संस्कृत भाषा के विद्वान थे। दूसरे मुसलमान हिन्दी कवि रसखान थे। अकबर के दीवाने खास में नौ रत्नों को विशेष सम्मान प्राप्त था।

अकबर संगीत का अनन्य प्रेमी था। संगीत को संरक्षण प्रदान करने के कारण उसके समय में संगीत कला की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। हिन्दू तथा मुसलमानों का संगीत मिलकर एक बन गया था। ''आइने अकबरी'' में उसके दरबार के 36 श्रेष्ठ संगीतज्ञों के नाम दिये हुए हैं। अकबर स्वयं अच्छा गायक था। तानसेन उसके दरबार का श्रेष्ठ गायक था। तानसेन ने कई नये रागों की सृष्टि की। दूसरा प्रसिद्ध गायक बैजू बावरा था। ऐसी किंवदंतियाँ हैं कि उसकी तानसेन के साथ संगीत की प्रतियोगिता हुई थी और उसने अपने गायन से तानसेन को परास्त कर दिया था। संगीत की दो भिन्न-भिन्न शैलियों को मिलाकर एक करने का तथा भारतीय राष्ट्रीय संगीत को जन्म देने का श्रेय अकबर को ही है।

अकबर ने स्थापत्य कला की भी नयी शैली को जन्म दिया। उसने आगरा, इलाहाबाद तथा लाहौर में तीन विशाल किले बनवाये। अकबर के समय की वास्तुकला का सबसे अच्छा नमूना उसकी नयी राजधानी फतेहपुर सीकरी में निर्मित इमारतें हैं। मुगल स्थापत्य कला का प्रभाव देश की सभी तत्कालीन इमारतों पर पड़ा। अकबर के साम्राज्य में बड़े-बड़े समृद्धिशाली नगर थे जिनमें दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी, अजमेर, लाहौर, मुल्तान, उज्जैन, बुरहानपुर, अहमदाबाद, बनारस, इलाहाबाद, पटना, हुगली, ढाका तथा चटगाँव आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। अकबर को चित्रकारी से भी बहुत प्रेम था। उसके दरबार में बहुत से योग्य और कुशल चित्रकार थे।

अकबर ऐसे उल्लेखनीय शासकों में एक हैं जिन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावना, धर्म सहिष्णुता और अपने निपुण शासन से भारत के इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। वह विदेशी आततायी तैमूर और चंगेज खाँ का वंशज था किन्तु उसने अपने को

पूरी तरह भारतीय बना लिया और देश के सर्वांगीण विकास के कार्यों में उसी प्रकार दत्त-चित्त होकर लगा रहा जैसे वह मूलरूप से भारतीय हो। भारत का इतिहास उसे अकबर महान के रूप में सदैव याद रखेगा।

अभ्यास

1.अकबर अपनी किन विशेषताओं के लिए याद रखा जाएगा ?

2.अकबर ने 'दीन-ए-इलाही' सम्प्रदाय क्यों चलाया ?

पाठ - १३

रानी दुर्गावती

गढ़मण्डल के जंगलों में उस समय एक शेर का आतंक छाया हुआ था । शेर कई जानवरों को मार चुका था। रानी कुछ सैनिकों को लेकर शेर को मारने निकल पड़ी। रास्ते में उन्होंने सैनिकों से कहा, "शेर को मैं ही मारुँगी"। शेर को ढूँढ़ने में सुबह से शाम हो गई। अंत में एक झाड़ी में शेर दिखाई दिया, रानी ने एक ही वार में शेर को मार दिया। सैनिक रानी के अचूक निशाने को देखकर आश्चर्य चकित रह गए।

ये वीर महिला गोंडवाना के राजा दलपतिशाह की पत्नी रानी दुर्गावती थीं।

ये वीर महिला गोंडवाना के राजा दलपतिशाह की पत्नी रानी दुर्गावती थीं।

पाठ - १४

अब्दुर्रहीम खानखाना

जो गरीब सों हित करैं, धनि रहीम वे लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ।।

जो लोग गरीबों का भला करते हैं वास्तव में वे ही धन्य हैं। कहाँ द्वारिका के राजा कृष्ण और कहाँ गरीब ब्राह्मण सुदामा। दोनों के बीच अमीरी-गरीबी का बहुत बड़ा अन्तर था, फिर भी श्रीकृष्ण ने सुदामा से मित्रता की और उसका निर्वाह किया।

उक्त पंक्तियों की रचना महान कवि रहीम ने की। रहीम ने कविताओं व दोहों में नीति और व्यवहार पर बल दिया और समाज को आदर्श मार्ग दिखाया। उन्होंने काव्य के द्वारा जिस सामाजिक मर्यादा को प्रस्तुत किया वह आज भी अनुकरणीय है।

रहीम का जन्म लाहौर (जो अब पाकिस्तान में है) में 1556 ई0 में हुआ। इनके पिता बैरम खाँ हुमायूँ के अतिविश्वसनीय सरदारों में से एक थे। हुमायूँ की मृत्यु के बाद बैरम खाँ ने तेरह वर्षीय अकबर का राज्याभिषेक कर दिया तथा उनके संरक्षक बन गए। हज यात्रा के दौरान मुबारक लोहानी नामक एक अफगानी पठान ने बैरम खाँ की हत्या कर दी। रहीम उस समय मात्र पाँच वर्ष के थे। रहीम अपनी माँ के साथ अकबर के दरबार में पहुँचे। अकबर ने रहीम के लालन-पालन की व्यवस्था राजकुमारों की तरह की। उन्होंने रहीम को 'मिर्जा खाँ' नामक उपाधि भी प्रदान की जो केवल राजकुमारों को दी जाती थी।

उन्होंने रहीम की शिक्षा के लिए मुल्ला अमीन को नियुक्त किया। रहीम ने मुल्ला अमीन से अरबी, फारसी, तुर्की, गणित, तर्कशास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त किया। अकबर ने रहीम के लिए संस्कृत अध्ययन की भी व्यवस्था की। बचपन से ही अकबर जैसे उदार व्यक्ति का संरक्षण प्राप्त होने के कारण रहीम में उदारता और दानशीलता के गुण भर गए।

रहीम को काव्य सृजन का गुण पैतृक परम्परा से प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त उन्हें राज्य संचालन, वीरता और दूरदर्शिता भी पैतृक रूप में मिली। मिर्जा खाँ रहीम की कार्य कुशलता, लगन और योग्यता देखकर अकबर ने उन्हें शासक वंश से जोड़ने का निश्चय किया। अकबर ने रहीम का विवाह माहम अनगा की बेटी तथा खानेजहाँ अजीज कोका की बहन से करा दिया।

सन् 1573 ई0 में मिर्जा खाँ रहीम का राजनीतिक जीवन आरम्भ हुआ। अकबर गुजरात के विद्रोह को शान्त करने के लिए अपने कुछ विश्वसनीय सरदारों को लेकर गए थे। उनमें सत्रह वर्षीय मिर्जा खाँ भी थे। 1576 ई0 में अकबर ने उन्हें गुजरात का सूबेदार बनाया। 1580 तक मिर्जा खाँ ने राजा भगवानदास और कुँवर मानसिंह जैसे योग्य सेनापतियों की संगति में रहकर अपने अन्दर एक अच्छे सेनापति के गुणों को विकसित कर लिया। प्रधान सेनापति के रूप में उन्होंने बहुत लड़ाइयाँ जीतीं। 28 वर्ष की आयु में मिर्जा खाँ को अकबर ने ‘खानखाना’ की उपाधि प्रदान की। अब उनका नाम मिर्जा खाँ अब्दुर्रहीम खानखाना हो गया। 1589में अकबर ने उन्हें वकील की पदवी से सम्मानित किया। उनके पहले यह सम्मान केवल उनके पिता बैरम खाँ को प्राप्त हुआ था।

उच्च कोटि के सेनापति और राजनीतिज्ञ होने के साथ ही रहीम श्रेष्ठ कोटि के कवि भी थे। अकबर का शासन काल हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है। इसी समय रहीम ने ब्रजभाषा, अवधी तथा खड़ी बोली में रचनाएँ की। उनकी प्रमुख रचनायें रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रास पंचाध्यायी, श्रंृगार, सोरठा, मदनाष्टक तथा खेल कौतुक हैं।

रहीम समाज की कुरीतियों, आडम्बरों के भी आलोचक थे। वे मानवता के रचनाकार थे। उन्होंने धर्म, सम्प्रदाय से दूर रह कर राम रहीम को एक माना। रहीम ने राम, सरस्वती, गणेश, कृष्ण, सूर्य, शिव-पार्वती, हनुमान और गंगा की स्तुति की है। भाषा, धर्म-सम्प्रदाय में न उलझकर उन्होंने मानवधर्म को परम धर्म माना।

सन् 1605 ई0 में अकबर की मृत्यु के बाद उनके पुत्र जहाँगीर से रहीम की नहीं बनी। जहाँगीर ने राजद्रोह के अभियोग में उन्हें कैद करवा लिया। उनकी सारी सम्पत्ति पर कब्जा कर लिया। कैद से छूटने के बाद उन्हें गम्भीर आर्थिक संकटों से जूझना पड़ा। वह दुःखी होकर चित्रकूट चले आए। उन्होंने लिखा-

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।

जा पर विपदा परत है, वहि आवत यहि देश।।

रहीम के अंतिम दिन बहुत ही संघर्षपूर्ण रहे। वह बीमार पड़ गए। उन्हें दिल्ली लाया गया जहाँ सन् 1628 में उनकी मृत्यु हो गई। उन्हें हुमायूँ के मकबरे के सामने अपने ही द्वारा बनवाए गए अधूरे मकबरे में दफनाया गया। अब्दुर्रहीम खानखाना अपनी रचनाओं के

कारण आज भी जीवित हैं। अकबर के नौ रत्नों में वे अकेले ऐसे रत्न थे जिनका कलम और तलवार पर समान अधिकार था। उन्होंने समाज के सामने 'सर्वधर्म समभाव' का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया जो मानव मात्र के लिए ग्रहणीय है।

परिभाषिक शब्द

Ûखानखाना-खान का अर्थ है सरदार,
Ûखानखाना का अर्थ है सरदारों का सरदार।
अभ्यास

1.रहीम का जन्म कब हुआ था ?

2.रहीम की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।

3.रहीम को किन गुणों के कारण याद किया जाता है ?

4.सही विकल्प चुनिए-

रहीम -

क.उच्चकोटि के चित्रकार थे।

ख.उच्चकोटि के इतिहासकार थे।

ग.उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ और कवि थे।

घ.एक सूफी संत थे।

5.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क.अकबर ने रहीम को .... नामक उपाधि प्रदान की।

ख.रहीम ने .... तथा खड़ी बोली में रचनाएँ की।

ग.रहीम ने समाज के सामने .... का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया।

योग्यता विस्तार:

इस पाठ में अकबर के नौ रत्नों का वर्णन आया है जिनमें से एक थे-अब्दुर्रहीम खानखाना। पता कीजिए कि शेष आठ कौन थे? यह भी पता कीजिए कि इन्हें किन गुणों के कारण नौ रत्न कहा जाता था? अपने पुस्तकालय से रहीम की रचनाएँ लेकर पढ़िए।

पाठ - १५

तानसेन

घनी झाड़ियों में सिंह की दहाड़ सुनकर स्वामी हरिदास की शिष्य मंडली भयभीत हो उठी। लोग सावधान हो ही रहे थे कि झाड़ियों के बीच से दस वर्ष का एक बालक हँसता हुआ बाहर निकला। स्वामी जी ने समझ लिया कि यही बालक सिंह की दहाड़ की नकल कर रहा था।

स्वामी हरिदास संगीतज्ञ थे। वे जान गए कि इस बालक में अद्भुत क्षमता विद्यमान है। उन्होंने उसे बुलाकर स्नेह से पूछा-

'बेटा तुम्हारा नाम क्या है ?'

'तन्ना मिश्र।'

'तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?'

'मकरन्द मिश्र।'

'तुम कहाँ रहते हो ?

'वहाँ, बालक ने अपने गाँव की ओर इशारा किया।

स्वामी हरिदास तन्ना के घर गए। उन्होंने तन्ना को शिक्षा देने के लिए उसके पिता से माँग लिया। उसे लेकर स्वामी जी वृन्दावन चले गए। उन्होंने उसे दस वर्ष तक संगीत की शिक्षा दी। संगीत की विभिन्न राग-रागिनियों में पारंगत होने के बाद तन्ना मिश्र बाद में 'तानसेन' नाम से विख्यात हुए। संगीत का और ज्ञान अर्जित करने के लिए उन्हें स्वामी जी ने हजरत मुहम्मद गौस के पास ग्वालियर भेज दिया।

संगीत का पर्याप्त ज्ञान अर्जित करने के बाद तानसेन पुनः स्वामी हरिदास के पास मथुरा लौट आए। यहाँ उन्होंने स्वामी जी से 'नाद' विद्या सीखी। अब तक तानसेन को संगीत में अद्भुत सफलता मिल चुकी थी। इनके संगीत से प्रभावित होकर रीवाँ-नरेश ने इन्हें अपने दरबार का मुख्य गायक बना दिया। रीवाँ-नरेश के यहाँ अकबर को तानसेन का संगीत सुनने का अवसर मिला। वह इनके संगीत को सुनकर भाव-विभोर हो उठे। उन्होंने रीवाँ

नरेश से आग्रह कर तानसेन को अपने दरबार में बुला लिया। इनके संगीत से प्रभावित होकर अकबर ने इन्हें अपने नवरत्नों में स्थान दिया। तानसेन के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि इनके गायन के समय राग-रागिनियाँ साक्षात प्रकट हो जाती थीं।

एक बार बादशाह अकबर ने तानसेन से 'दीपक' राग गाने का हठ किया। निश्चित समय पर इन्होंने दरबार में दीपक राग गाना शुरू किया। ज्यों-ज्यों आलाप बढ़ने लगा गायक और श्रोता पसीने से तर होने लगे। गाने का अन्त होते-होते दरबार में रखे दीपक स्वयं जल उठे और चारों ओर अग्नि की लपटें दिखाई देने लगीं। दरबारियों में हाहाकार मच गया और वे इधर-उधर भागने लगे। कहा जाता है कि तानसेन की पुत्री सरस्वती ने मेघ मल्हार राग गाकर अग्नि का शमन किया और लोगों की प्राणरक्षा की।

तानसेन के जीवन से ऐसी अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ जुड़ी हैं, जैसे संगीत के प्रभाव से पानी बरसाना, वन्य-पशुओं को सम्मोहित करना तथा असाध्य रोगों को ठीक करना आदि।

तानसेन की सफलता का मूल आधार है उनकी कार्य के प्रति निष्ठा तथा निरन्तर कठिन अभ्यास की आदत। इन्हीं गुणों के कारण वे महान संगीतज्ञ बनने में सफल हुए।

अकबर के आदेश से एक बार आगरा के समीप वन में संगीत प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। तानसेन का सामना करने के लिए साधुवेश में एक व्यक्ति आया। प्रतियोगिता आरम्भ हुई। तानसेन की स्वर लहरी से मुग्ध मृगों का समूह उनके पास आया। उन्होंने एक मृग के गले में अपनी माला डाल दी। संगीत समाप्त होने पर मृग जंगल में भाग गए। अब उस साधु वेशधारी गायक की बारी थी। उसने 'मृगरंजनी' राग गाकर उस मृग को बुला लिया जिसके गले में तानसेन की माला पड़ी थी। यह देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए।

तानसेन संगीत की दुनिया के सम्राट माने जाते हैं। दरबारी, तोड़ी, मियाँ की मल्हार, मियाँ की सारंग आदि अनेक राग-रागिनियों की रचना तानसेन ने ही की थी। 1589ई0 में इस महान गायक का स्वर्गवास हो गया। ग्वालियर में इनकी समाधि बनी है। इस समाधि पर प्रतिवर्ष संगीत समारोह होता है जिसमें संगीतज्ञ आकर अपने श्रद्धा सुमन चढ़ाते हैं। इससे हमें संदेश मिलता है कि कठोर परिश्रम एवं लगन से व्यक्ति निश्चय ही उन्नति के शिखर पर चढ़ सकता है।

अभ्यास

1.तानसेन का वास्तविक नाम क्या था ?

2.तानसेन ने संगीत किन-किन लोगों से सीखा ?

3.अकबर का तानसेन से परिचय कैसे हुआ ?

4.तानसेन की सफलता का मूल आधार क्या है ?

5.सही विकल्प छाँटकर लिखिए-

(क)तानसेन को सर्वप्रथम संगीत की शिक्षा
□स्वामी नरहरिदास ने दी थी।
□स्वामी हरिदास ने दी थी।
□हजरत मुहम्मद गौस ने दी थी।
□रींवा नरेश ने दी थी।
(ख)संगीत से प्रभावित होकर अकबर ने तानसेन को
□पुरस्कार दिया ।
□दरबारी बना लिया।
□मंत्री बना दिया।
□नवरत्नों में स्थान दिया।
(ग) साधुवेशधारी बैजनाथ ने मृग को बुलाया-
□मृग मोहनी राग गाकर ।
□मृगरंजनी राग गाकर ।
□मल्हार राग गाकर ।
□मेघ मल्हार राग गाकर ।
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-
□संगीत की विभिन्न राग-रागिनियों में पारंगत होने के बाद तन्ना मिश्र ....नाम से विख्यात हुए।
□तानसेन की सफलता का मूल आधार उनकी कार्य के प्रति .... तथा निरन्तर .... की आदत थी।
□कठोर परिश्रम एवं लगन से व्यक्ति निश्चय ही .... के शिखर पर चढ़ सकता है।
योग्यता विस्तार
अकबर ने तानसेन को अपना नवरत्न बना लिया था। पता कीजिए कि अकबर के दरबार में और कौन-कौन नवरत्न थे ?

पाठ - १६

हैदर अली

भारत के इतिहास में हैदर अली का उदय उस दीप्तिमान नक्षत्र की भाँति हुआ जो कुछ समय के लिए आकाश में जगमगा कर शून्य में विलीन हो गया।

हैदर अली का जन्म सन् 1721 ई0 में मैसूर राज्य के सामान्य परिवार में हुआ था। उनके पिता मैसूर की सेना में सिपाही थे। हैदर अली ने भी मैसूर की सेना में नौकरी कर ली। बचपन में उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी। इस कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा का कोई उचित प्रबन्ध नहीं हो सका और परिवार के पालन-पोषण का भार भी उन्हीं के कन्धों पर आ पड़ा। हैदर अली परिश्रमी और कुशाग्र बुद्धि के सैनिक थे और बड़ी तत्परता से अपने कर्तव्य का पालन करते थे। उनकी योग्यता देखकर मैसूर राज्य के मन्त्री ने उन्हें देवनहाली के किले का रक्षक नियुक्त कर दिया। उस समय मराठे और निजाम मैसूर पर आक्रमण कर रहे थे। अवसर का लाभ उठाकर हैदर अली अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने लगे। सन् 1755 ई0 में वे डिण्डीगल के फौजदार बन गए और अपनी एक सेना तैयार कर ली। अंग्रेजों की रणनीति और उनके सैनिक प्रशिक्षण को वे श्रेष्ठ समझते थे। फ्रान्सीसियों की सहायता से उन्होंने अपनी सेना को भी आधुनिक ढंग से प्रशिक्षित किया। उन्होंने डिण्डीगल में आधुनिक ढंग का तोपखाना भी स्थापित कर लिया।

जब मराठों ने मैसूर पर आक्रमण किया तब मैसूर की रक्षा के लिए हैदर अली अपनी सेना लेकर आ गए। उन्होंने बड़ी बहादुरी से युद्ध किया और शत्रुओं को राज्य की सीमा से बाहर खदेड़ दिया। युद्ध में विजय प्राप्त करके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे कुशल और योग्य सेना संचालक थे। अब राज्य में उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया था। राज्य के मन्त्रियों को भी उन्होंने अपने प्रभाव में ले लिया था। राजा के स्वर्गवास हो जाने पर वे स्वयं मैसूर के शासक बन गये।

यद्यपि हैदर अली पढ़े लिखे नहीं थे पर वे कुशल प्रशासक थे। अपनी प्रजा को वे समान दृष्टि से देखते थे। वे न्यायप्रिय थे और निर्णय लेने में कभी विलम्ब नहीं करते थे। हैदर अली

स्वयं अनुशासन में रहते थे और अनुशासन भंग करने वालों को कठोर दण्ड देते थे। किसानांे के हित का वे ध्यान रखते थे और दीन-दुखियों की सहायता करने के लिए सदा तैयार रहते थे। सेना के संगठन पर उनका विशेष ध्यान रहता था। उनके सैनिकों को नियत समय पर वेतन मिल जाता था और वे राज्य के सम्मान की रक्षा के लिए सदैव अपने प्राणों की बलि देने को तैयार रहते थे। हैदर अली के शासन काल में मैसूर की प्रजा सुखी और सम्पन्न थी।

हैदर अली की सफलता को देखकर मराठे और निजाम उनसे ईर्ष्या करने लगे थे और उनको नीचा दिखाने की योजनाएँ बनाते रहते थे। हैदर अली ने मराठा राज्य के कुछ क्षेत्र को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था।

सन् 1765 ई0 में हैदर अली और निजाम ने मिलकर अंग्रेजों से युद्ध छेड़ दिया। अंग्रेजों ने निजाम तथा मैसूर की सम्मिलत सेना को पराजित कर दिया। पराजय से घबराकर निजाम ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली। निजाम के इस व्यवहार से हैदर अली बहुत क्रोधित हुए। वे अकेले ही अंग्रेजों से लड़ते रहे। अंग्रेजों को पराजित करते हुए वे मद्रास (चेन्नई) के निकट जा पहुँचे। हैदर अली का रण कौशल देखकर अंग्रेज घबरा गए और उनके पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा। हैदर अली ने अपमानजनक सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए अंग्रेजों को विवश कर दिया। इस युद्ध से दक्षिण भारत में हैदर अली का सिक्का जम गया। अब हैदर अली समझ गए थे कि यदि एकजुट होकर अंग्रेजों का सशक्त विरोध न किया गया तो वे सारे भारत को गुलाम बना लेंगे।

सन् 1778 ई0 में अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों मंे युद्ध छिड़ गया था। अंग्रेजों ने पाण्डिचेरी पर अधिकार करके मालाबार तट पर स्थित माही नदी पर भी आक्रमण कर दिया। हैदर अली इसे सहन न कर सके। उन्होंने निजाम और मरहठों से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध एक संघ बनाया और एक बड़ी सेना लेकर कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में हैदरअली ने अंग्रेज सेनापति कर्नल बेली का वध कर डाला और कर्नाटक की राजधानी पर अधिकार कर लिया। इस पराजय से अंग्रेजों की स्थिति बहुत बिगड़ गयी और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब दक्षिण भारत से अंग्रेजों के पैर उखड़ जायेगें।

हैदर अली को विश्वास था कि वे दक्षिण भारत में अंग्रेजों की शक्ति को समूल नष्ट कर देंगे, पर इसी समय अंग्रेज अपनी कूटनीति में सफल हो गये। उन्होंने मराठों के साथ सन्धि कर ली और हैदर को मराठों से सहायता मिलनी बन्द हो गयी। निजाम ने भी देखा कि अब हैदर अली का पक्ष कमजोर हो रहा है अतः उसने भी अपना हाथ खींच लिया। हैदर अली अकेले ही अंग्रेजों से जूझते रहे। अन्तिम युद्ध शौलीगढ़ नामक स्थान पर हुआ जिसमंे हैदरअली की हार हुई और उन्हें अंग्रेजों के साथ सन्धि करनी पड़ी। सन्धि के कुछ महीने बाद ही हैदर अली बीमार पड़े और उनकी मृत्यु हो गयी। निजाम और मरहठों ने उनका डटकर साथ नहीं दिया इसीलिए वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके।

एक सिपाही के पद से उन्नति करके हैदर अली एक राज्य के शासक बने थे। वे पढ़े-लिखे नहीं थे पर उनकी बुद्धि विलक्षण थी। अपनी बुद्धि के बल पर ही वे अपने जीवन में इतनी सफलता प्राप्त कर सके। बचपन मंे पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उनको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। वे परिश्रमी, दृढ़प्रतिज्ञ, कुशाग्रबुद्धि, दूरदर्शी और कुशल राजनीतिज्ञ थे। वे अवसर का लाभ उठाने में कभी नहीं चूकते थे। उनके सेना संचालन और रण कौशल की शत्रु भी प्रशंसा करते थे।

हैदर अली धर्मनिरपेक्ष शासक थे। हिन्दुओं और मुसलमानों मंे वे किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं करते थे। उनके सिक्के पर एक ओर त्रिशूल लिये शिव और पार्वती की आकृतियाँ बनी थीं। महानवमी का पर्व वे विशेष उत्साह से मनाते थे। इस अवसर पर राजधानी को बन्दनवारों और पताकाओं से सजाया जाता था। दूर-दूर से साधु-महात्मा आते थे और अपने धर्म का उपदेश देते थे। दशहरे के दिन हाथी, ऊँट और घोड़ों के साथ सेना का शानदार जुलूस निकलता था। हैदर अली सफेद हाथी पर सोने के हौदे में बैठकर जुलूस के साथ चलते थे। भगवान की सवारी के पास पहुँचकर वे उनके दर्शन करते और आशीर्वाद प्राप्त करते थे। जुलूस में भगवान की सवारी के पीछे हैदर का हाथी चलता था। जुलूस एक मैदान के निकट समाप्त होता था। मैदान में अनेक प्रकार के खेल की प्रतियोगिताएँ होती थीं। हिन्दू-मुसलमान सभी इन प्रतियोगिताओं में सम्मिलित होते थे। हैदर अली विजेताओं को पुरस्कार देते थे। उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता का जो आदर्श प्रस्तुत किया है वह प्रशंसनीय और आज भी अनुकरणीय है।

हैदर अली के व्यवहार में किसी प्रकार का छल-कपट नहीं था। वे जो कुछ कहते थे वही करते थे। उन्होंने अपने शत्रुओं को भी कभी धोखा नहीं दिया। यदि मराठे और निजाम अन्त तक उनका साथ देते तो आज भारत का इतिहास कुछ और ही होता।

अभ्यास

1.हैदर अली मैसूर के शासक किस प्रकार बन गए ?

2.अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने में हैदर अली को सफलता क्यांे नहीं मिली ?

3.किस आधार पर हम कह सकते हैं कि शासन संचालन में हैदर अली भेद-भाव की नीति पर विश्वास नहीं करते थे ?

पाठ - १७

रानी चेन्नम्मा

कर्नाटक प्रान्त में एक छोटा सा कस्बा है कित्तूर। यह धारवाड़ और बेलगाँव के बीच बसा है।

एक बार की बात है, बेलगाँव के काकति नामक स्थान पर नरभक्षी बाघ का आतंक फैल गया। जन-जीवन संकट में था। उस समय कित्तूर में राजा मल्लसर्ज का शासन था। वे आखेट प्रिय थे। राजा उस समय काकति आये तो उन्हें बाघ के आतंक की सूचना मिली। राजा तुरन्त बाघ की खोज में निकले। सौभाग्य से बाघ का पता शीघ्र ही चल गया और राजा ने उस पर बाण चला दिया। बाघ घायल होकर गिर गया। राजा तुरन्त बाघ के निकट पहुँचे, लेकिन यह क्या ? बाघ पर एक नहीं दो-दो बाण बिंधे थे जबकि राजा ने एक ही बाण चलाया था। राजा आश्चर्य में पड़ गया। तभी उसकी दृष्टि सैनिक वेशभूषा में सजी एक सुन्दर कन्या पर पड़ी। राजा को समझते देर न लगी कि दूसरा बाण कन्या का ही है।

राजा को देखते ही कन्या क्रुद्ध स्वर में बोली, "आपको क्या अद्दिकार था जो आपने मेरे खेल में विघ्न डाला।" राजा कुछ न बोल सका। वह मन ही मन कन्या की वीरता और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे देखता रह गया। इतने में राजा के अन्य साथी भी आ गए। राजा ने उन्हें बताया कि बाघ इस वीर कन्या के बाण से आहत होकर मरा है। सभी लोग कन्या की वीरता की सराहना करने लगे।

राजा ने उस वीर कन्या के विषय में जानकारी की। उसे ज्ञात हुआ कि वह काकति के मुखिया की पुत्री चेन्नम्मा है। राजा ने मुखिया से उसकी वीरपुत्री का हाथ माँगा। मुखिया ने 'हाँ' कर दी और वह वीर कन्या कित्तूर की रानी चेन्नम्मा बन गई। राजा मल्लसर्ज ने 1782 से 1816 तक लगभग चौंतीस वर्ष कित्तूर के छोटे से राज्य पर शासन किया। वे रानी

चेन्नम्मा की राजनैतिक कुशलता से अत्यन्त प्रभावित थे। राज्य के शासन प्रबन्ध में वे रानी की सलाह लिया करते थे। पेशवा द्वारा धोखे से बन्दी बना लेने के कारण राजा मल्लसर्ज को बहुत समय तक बन्दीगृह में रहना पड़ा जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। कित्तूर लौटते-लौटते वह अन्तिम साँसें गिनने लगे। चेन्नम्मा ने राजा की रात-दिन सेवा की। स्वस्थ करने का हर सम्भव प्रयास किया किन्तु क्रूरकाल से वह उन्हें बचा न पायीं। उन्होंने कित्तूर की स्वाधीनता की रक्षा को ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। यह ऐसा समय था जब अंग्रेज कित्तूर की वीरभूमि पर अपना अधिकार करने के लिए प्रयत्नशील थे।

राजा मल्लसर्ज के बाद कित्तूर की गद्दी पर उनका पुत्र शिवलिंग रुद्रसर्ज बैठा। रुद्रसर्ज अस्वस्थ रहता था जिसके कारण शीघ्र ही उसकी भी मृत्यु हो गई। अब कित्तूर के सम्मुख उत्तराधिकारी का संकट आ खड़ा हुआ। अंग्रेज चाहते थे कि रानी किसी उत्तराधिकारी को गोद न लें। चेन्नम्मा अंग्रेजों की चाल समझ गयीं।

उन्होंने प्रण किया कि वे जीते जी कित्तूर को अंग्रेजों के हवाले नहीं करेंगी।

चेन्नम्मा ने ब्रिटिश अधिकारियों को अपना मन्तव्य बार-बार स्पष्ट कर दिया किन्तु वे अपनी चालें चलते रहे। क्रुद्ध होकर रानी ने कित्तूरवासियों को सचेत करते हुए अपने सरदारों और दरबार के अधिकारियों के सामने आवेशपूर्ण घोषणा की-"कित्तूर हमारा है। हम अपने इलाके के स्वयं मालिक हैं। अंग्रेज कित्तूर पर अधिकार कर उस पर शासन करना चाहते हैं। वे निश्चय ही भ्रम में हैं। कित्तूर के लोग स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति दे सकते हैं । हमारा एक सिपाही उनके दस-दस सिपाहियों के बराबर है। कित्तूर झुकेगा नहीं, वह अपनी धरती की रक्षा के लिए अन्तिम क्षण तक लड़ेगा।"

रानी की ओजपूर्ण वाणी का सटीक प्रभाव पड़ा। दरबारियों एवं जनता में जोश की लहर दौड़ गई। सब एक स्वर में चिल्ला उठे, "कित्तूर की जय, रानी चेन्नम्मा की जय।"

अंग्रेजों को कित्तूर की स्वाधीनता खटक रही थी। अंग्रेज कलेक्टर थैकरे ने 23 सितम्बर, 1824 को कित्तूर पर घेरा डाल दिया। उसके सिपाही किले में घुसने की कोशिश करने लगे। चेन्नम्मा के सरदार गुरु सिछप्पा ने भी अपने वीर सिपाहियों को आदेश दिया कि उन्हें कुचल डालें, खदेड़ भगाएँ। पल भर में कित्तूर के वीरों ने अंग्रेजी सेना को तहस-नहस कर दिया। अंग्रेजी सेना के लगभग चालीस लोग बन्दी बना लिए गए। बन्दी बनाए गए लोगों में कुछ अंग्रेज सैनिक, कुछ स्त्रियाँ तथा बच्चे भी थे। चेन्नम्मा ने सैनिकों को तो बन्दीगृह में डाल दिया किन्तु स्त्रियों तथा बच्चों को वह राजमहल के अतिथिगृह में ले आयीं। शत्रुपक्ष को सूचना दे दी गयी कि उनके बच्चे व स्त्रियाँ सुरक्षित हैं, जब चाहें उन्हें वापस ले जाएँ। रानी के इस उदारतापूर्ण व्यवहार से शत्रुपक्ष बहुत प्रभावित हुआ। थैकरे भी इस व्यवहार से प्रभावित हुए बिना न रह सका।

वीरता और उदारता का ऐसा अद्भुत संगम बहुत कम देखने को मिलता है।

अंग्रेजों के साथ हुए इस अल्पकालिक युद्ध में रानी को जो विजय मिली वह उनकी शक्ति का प्रथम संकेत थी। पराजय के बाद कलेक्टर थैकरे ने कई बार प्रयास किया कि वह रानी से मिलकर उन्हें अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने को विवश करें, किन्तु उसके सभी प्रयास विफल रहे। हारकर कलेक्टर थैकरे ने कित्तूर के दुर्ग की ओर अपनी तोपें लगवा दीं। उसने कित्तूरवासियों को चेतावनी दी कि अगले दिन प्रातःकाल तक दुर्ग का द्वार न खोला गया तो दुर्ग को तोपों से उड़ा दिया जायेगा। रानी पर इस चेतावनी का कोई असर न हुआ। वह अपनी तैयारी में जुटी रहीं। अगले दिन प्रातः एक बार फिर चौबीस मिनट का समय दुर्ग का द्वार खोलने के लिए दिया। अंग्रेज सैनिकों को पूरी उम्मीद थी कि द्वार खुल जाएगा। ठीक चौबीस मिनट बाद एक झटके से दुर्ग का द्वार खुला। जो दृश्य था, वह अंग्रेजों की कल्पना से परे था। कित्तूर के सिपाही विद्युत गति से अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। रानी चेन्नम्मा किले के परकोटों पर खड़ी सेना का संचालन कर रही थीं। कमर में सोने की पेटी, पेटी में लटकती म्यान, दाहिने हाथ में चमचमाती नंगी तलवार और बायें हाथ में घोड़े की लगाम। रानी चेन्नम्मा का यह रूप उनके साहस और संकल्प का परिचय दे रहा था। कित्तूर के वीरों ने गुप्त द्वार से निकल-निकलकर शत्रुओं को मौत के घाट उतारना शुरू कर दिया। अंग्रेजी सेना इस आक्रमण के लिए तैयार न थी। अंग्रेजी सेना के पैर उखड़ गए और सैनिक भयभीत होकर भाग खड़े हुए। अपने सैनिकों को भागता देख थैकरे ने अपना घोड़ा दुर्ग की ओर बढ़ाया। कित्तूर का वीर सैनिक बालप्पा रानी के पास ही खड़ा था। उसने निशाना साधा और थैकरे को परलोक पहुँचा दिया। अंग्रेजी सेना में हाहाकार मच गया। थैकरे के अतिरिक्त अन्य कई बड़े अधिकारी और सैनिक मारे गए। यह एक निर्णायक युद्ध था जिसमें रानी चेन्नम्मा ने विजय प्राप्त की।

कित्तूर के निकट धारवाड़ नामक स्थान पर उस समय बहुत बड़ी संख्या में अंग्रेज सैनिक और अधिकारी विद्यमान थे। उन्हें इस समाचार पर विश्वास ही नहीं हुआ कि कित्तूर के मुट्ठी भर वीरों से अंग्रेजी सेना को मुँह की खानी पड़ी। उन्होंने तुरन्त अपने सभी सैनिक अड्डों पर यह समाचार भेज दिया। कई देशी राजाओं और मराठों को भी अंग्रेजों ने अपनी ओर मिलाने की कोशिश की। एक बार पुनः दलबल एकत्र कर अंग्रेजों ने कित्तूर रियासत पर आक्रमण की योजना बनाई।

अंग्रेजों ने रानी चेन्नम्मा को अधीनता स्वीकार करने के लिए अनेक प्रलोभन दिए, जिन्हें रानी ने ठुकरा दिया। वीर रानी किसी भी कीमत पर कित्तूर की स्वाधीनता बेचने को तैयार न थीं। इन प्रस्तावों पर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुईं। यद्यपि रानी के पास सैन्य बल कम था, फिर भी वह युद्ध के लिए तैयार थीं।

जब अंग्रेजों की दाल किसी भी प्रकार न गली तो अन्ततः उन्होंने दिसम्बर 1824 को पुनः कित्तूर पर आक्रमण कर दिया। वीर रानी अपने सैनिकों को उत्साहित करती रहीं। लगभग पाँच दिन तक युद्ध चला। कित्तूर दुर्ग के बाहर का मैदान वीरों की लाशों से पट गया। 5

दिसम्बर 1824 को प्रातः कित्तूर के ध्वस्त किले के परकोटे पर अंग्रेजों का झण्डा ‘यूनियन जैक’ फहराने लगा। एक स्वर्णिम अध्याय का अंत हो गया।

वीर रानी चेन्नम्मा बन्दी बना ली गयीं। उन्हें लगभग पाँच वर्ष तक बेलहोंगल के किले में बन्दी बनाकर रखा गया। 21 फरवरी, 1829 को रानी की मृत्यु हो गई। उनकी वीरता, साहस, पराक्रम तथा देशभक्ति कित्तूरवासियों के लिए प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुई।

कित्तूर दुर्ग के खण्डहरों को देखकर आज भी उनकी गौरव गाथा सहसा ही याद हो आती है। बेलहोंगल में बना रानी चेन्नम्मा स्मारक तथा धारवाड़ में बना कित्तूर चेन्नम्मा पार्क रानी की वीरता, त्याग व उत्सर्ग की याद दिलाते हैं। देश-प्रेम और उत्सर्ग का यह ऐसा उदाहरण है जिसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

अभ्यास

1.अंग्रेज क्यों नहीं चाहते थे कि रानी किसी उत्तराधिकारी को गोद लें ?

2.रानी चेन्नम्मा के व्यक्तित्व की किन विशेषताओं ने आप को सबसे ज्यादा प्रभावित किया और क्यों ?

3.इस पाठ में रानी के व्यक्तित्व की किन-किन विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है ?

4.पता कीजिए-

क. कुछ और वीर महिलाओं के बारे में जानकारी कीजिए जिन्होंने देश के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिए।

ख.आपके क्षेत्र-गाँव, तहसील, जनपद में ऐसी अनेक महिलाएं होंगी जिन्होंने अपने कार्यों से प्रदेश/देश का नाम रोशन किया होगा। उनके बारे में बड़ों से पता कीजिए।

5.वीर चेन्नम्मा की कथा का कक्षा में नाटक के रूप में अभिनय कीजिए।

6.वर्तनी शुद्ध कीजिए-व्यक्ती, आकृमण, आहूति, सौभाज्ञ।

7.पाठ में आये मुहावरे छाँटकर अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

8.सही विकल्प को चुनिए-

रानी चेन्नम्मा ने अंग्रेजों के सभी प्रलोभन ठुकरा दिए, क्योंकि-

□वह बहुत सम्पन्न थीं।

□वह कित्तूर की स्वाधीनता बेचने को तैयार न थीं।

□उन्हें अंग्रेजों पर विश्वास न था।

9.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

□रानी चेन्नम्मा ने प्रण किया कि वे ....।

□.. में बना रानी चेन्नम्मा स्मारक तथा धारवाड़ में बना .... रानी की वीरता त्याग व उत्सर्ग की याद दिलाते हैं।

योग्यता विस्तार:

मानचित्र में पता कीजिए-कर्नाटक, धारवाड़, बेलगाँव, कित्तूर।

पाठ - १८

महात्मा ज्योतिबा फुले

विद्या बिना मति गयी, मति बिना गति गयी।
नीति बिना गति गयी, गति बिना वित्त गया।
वित्त बिना शूद्र गए, इतने अनर्थ, एक अविद्या ने किए।

महात्मा ज्योतिबा को 19 वीं सदी का प्रमुख समाज सेवक माना जाता है। उन्होंने भारतीय समाज में फैली अनेक कुरीतियों को दूर करने के लिए सतत् संघर्ष किया। अछूतोद्धार, नारी-शिक्षा, विधवा-विवाह और किसानों के हित के लिए ज्योतिबा ने उल्लेखनीय कार्य किया है। उनका जन्म 1827 ई0 में हुआ था। एक वर्ष की अवस्था में ही इनकी माता का निधन हो गया था। ज्योतिबा का लालन-पालन सगुणाबाई नामक एक दाई ने किया। सगुणाबाई ने ज्योतिबा को माँ की ममता और प्यार दिया।

सात वर्ष की आयु में ज्योतिबा को गाँव के स्कूल में पढ़ने भेजा गया। जातिगत भेद-भाव के कारण उन्हें विद्यालय छोड़ना पड़ा। स्कूल छोड़ने के बाद भी उनमें पढ़ने की ललक बनी रही। सगुणाबाई ने बालक ज्योतिबा को घर में ही पढ़ने में मदद की। घरेलू कार्यों के बाद जो समय बचता उसमें वह किताबें पढ़ते थे। ज्योतिबा पास-पड़ोस के बुजुर्गों से विभिन्न विषयों में चर्चा करते थे। लोग उनकी सूक्ष्म और तर्क संगत बातों से बहुत प्रभावित होते थे। अरबी-फारसी के विद्वान गफ्फार बेग मुंशी एवं फादर लिजीट साहब ज्योतिबा के पड़ोसी थे। उन्होंने बालक ज्योतिबा की प्रतिभा एवं शिक्षा के प्रति उसकी रुचि देखकर उसे पुनः विद्यालय भेजने का प्रयास किया। उन्हें एक बार फिर स्कूल भेजा गया। वह स्कूल में सदा प्रथम आते रहे। धर्म पर टीका-टिप्पणी सुनने पर उनके अन्दर जिज्ञासा हुई कि हिन्दू धर्म में इतनी विषमता क्यों है ? जाति-भेद और वर्ण व्यवस्था क्या है ? वह अपने मित्र सदाशिव बल्लाल गोवंडे के साथ समाज, धर्म और देश के बारे में चिन्तन किया करते। उन्हें इस प्रश्न का उत्तर नहीं सूझता कि इतना बड़ा देश गुलाम क्यों है ? गुलामी से उन्हें नफरत होती थी।

उन्होंने महसूस किया कि जातियों और पंथों पर बँटे इस देश का सुधार तभी सम्भव है जब लोगों की मानसिकता में सुधार होगा।

उस समय समाज में वर्ग-भेद अपनी चरम सीमा पर था। स्त्री और दलित वर्ग की दशा अच्छी नहीं थी। उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता था। ज्योतिबा को इस स्थिति पर बड़ा दुःख होता था। उन्होंने स्त्री और दलितों की शिक्षा के लिए सामाजिक संघर्ष का बीड़ा उठाया। उनका मानना था कि-''माताएँ जो संस्कार बच्चों पर डालती हैं उसी में उन बच्चों के भविष्य के बीज होते हैं।'' इसलिए लड़कियों को शिक्षित करना आवश्यक है।

उन्होंने निश्चय किया कि वह वंचित वर्ग की शिक्षा के लिए स्कूलों का प्रबन्ध करेंगे। उस समय जाति-पाँति, ऊँच-नीच की दीवारें बहुत ऊँची थीं। दलितों एवं स्त्रियों की शिक्षा के रास्ते बन्द थे। ज्योतिबा इस व्यवस्था को तोड़ने हेतु दलितों और लड़कियों को अपने घर में पढ़ाते थे। वह बच्चों को छिपाकर लाते और वापस पहुँचाते थे। जैसे-जैसे उनके समर्थक बढ़े उन्होंने खुलेआम स्कूल चलाना प्रारम्भ कर दिया।

स्कूल प्रारम्भ करने के बाद ज्योतिबा को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनके विद्यालय में पढ़ाने को कोई तैयार न होता। कोई पढ़ाता भी तो सामाजिक दबाव में उसे जल्दी ही यह कार्य बन्द करना पड़ता। इन स्कूलों में पढ़ाये कौन ? यह एक गंभीर समस्या थी। ज्योतिबा नें इस समस्या के हल हेतु अपनी पत्नी सावित्री को पढ़ना सिखाया और फिर मिशनरीज के नार्मल स्कूल में प्रशिक्षण दिलाया। प्रशिक्षण के बाद वह भारत की प्रथम प्रशिक्षित महिला शिक्षिका बनीं।

उनके इस कार्य से समाज के लोग कुपित हो उठे। जब सावित्री बाई स्कूल जातीं तो लोग उनको तरह-तरह से अपमानित करते, परन्तु वह महिला अपमान का घूँट पीकर भी अपना कार्य करती रहीं। इस पर लोगों ने ज्योतिबा को समाज से बहिष्कृत करने की धमकी दी और उन्हें उनके पिता के घर से बाहर निकलवा दिया। गृह त्याग के बाद पति-पत्नी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, परन्तु वह अपने लक्ष्य से डिगे नहीं।

अंधेरी काली रात थी। बिजली चमक रही थी। महात्मा ज्योतिबा को घर लौटने में देर हो गई थी। वह सरपट घर की ओर बढ़े जा रहे थे। बिजली चमकी उन्होंने देखा आगे रास्ते में दो व्यक्ति हाथ मंे चमचमाती तलवारें लिए जा रहे हैं। वह अपनी चाल तेज कर उनके समीप पहुँचे। महात्मा ज्योतिबा ने उनसे उनका परिचय व इतनी रात में चलने का कारण जानना चाहा। उन्होंने बताया हम ज्योतिबा को मारने जा रहे हैं। महात्मा ज्योतिबा ने कहा-उन्हें मार कर तुम्हें क्या मिलेगा ? उन्होंने कहा-पैसा मिलेगा, हमें पैसे की आवश्यकता है। महात्मा ज्योतिबा ने क्षण भर सोचा फिर कहा-'मुझे मारो, मैं ही ज्योतिबा हूँ, मुझे मारने से यदि तुम्हारा हित होता है, तो मुझे खुशी होगी। इतना सुनते ही उनकी तलवारें हाथ से छूट गई। वह ज्योतिबा के चरणों में गिर पड़े। फिर उनके शिष्य भी बने।

महात्मा ज्योतिबा फुले ने 'सत्य शोधक समाज' नामक संगठन की स्थापना की। सत्य

शोधक समाज उस समय के अन्य संगठनों से अपने सिद्धान्तों व कार्यक्रमों के कारण भिन्न था। सत्य शोधक समाज पूरे महाराष्ट्र में शीघ्र ही फैल गया। सत्य शोधक समाज के लोगों ने जगह-जगह दलितों और लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले। छुआ-छूत का विरोध किया। किसानों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन चलाया।

महात्मा ज्योतिबा व उनके संगठन के संघर्ष के कारण सरकार ने ‘एग्रीकल्चर एक्ट’ पास किया।

धर्म, समाज और परम्पराओं के सत्य को सामने लाने हेतु उन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखी। 28 नवम्बर सन् 1890 ई0 को उनका देहावसान हो गया।

जीवन भर गरीबों, दलितों व महिलाओं के लिए संघर्ष करने वाले इस सच्चे नेता को जनता ने आदर से ‘महात्मा’ की पदवी से विभूषित किया। उन्हें समाज के सशक्त प्रहरी के रूप में सदैव याद किया जाता रहेगा।

ज्योतिबा द्वारा लिखी गयी प्रमुख पुस्तकें-

Ûतृतीय रत्न Ûछत्रपति शिवाजी Ûराजा भोसला का पखड़ा

Ûब्राह्मणों का चातुर्यÛकिसान का कोड़ाÛअछूतों की कैफियत

अभ्यास

1.महात्मा ज्योतिबा फुले का जन्म कब और कहाँ हुआ ?

2.उन्होंने भारत की गुलामी का क्या कारण माना ?

3.किस घटना ने ज्योतिबा को सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध लड़ने को प्रेरित किया ?

4.महात्मा ज्योतिबा ने दलितों और स्त्रियों के सम्मान हेतु क्या-क्या कार्य किए ?

5.निम्नलिखित अधूरे वाक्यों को पूरा कीजिए -

क.वे अपने मित्र सदाशिव बल्लाल गोवंडे के साथ ....

ख.उन्होंने तय किया कि जिन वर्गों के लिए शिक्षा ....

ग.महात्मा ज्योतिबा फुले ने ‘सत्य..............................’

घ.महात्मा ज्योतिबा द्वारा किसानों के हितों के लिए किए गए संघर्ष के फलस्वरूप ......

6.महात्मा ज्योतिबा फुले द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची बनाइए।

7.सही विकल्प छाँटकर लिखिए-

ज्योतिबा की हत्या के लिए भेजे गए लोग उनके शिष्य बन गए क्योंकि-

□वे महात्मा ज्योतिबा से डर गए थे।

□महात्मा ज्योतिबा ने उन्हें लालच दिया था।

□वे उनके विचारों से प्रभावित हो गए थे।

पाठ - १९

एनी बेसेन्ट

जिन विदेशी महिलाओं ने भारत के राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक उत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है उनमें एनी बेसेन्ट का स्थान बहुत ऊँचा है। एनी बेसेन्ट जन्म से आयरलैण्ड की थीं पर भारत मंे आकर यहाँ के समाज में घुल-मिलकर पूर्णतः भारतीय बन गयी थीं।

एनी बेसेन्ट का जन्म 1 अक्टूबर सन् 1847 ई0 को लन्दन में हुआ था। उनकी माता आयरलैण्ड की थीं और पिता इंग्लैण्ड के रहने वाले थे। बचपन में एनी बेसेन्ट को आयरिश भाषा और आयरिश रहन-सहन बहुत प्रिय थे। जब एनी बेसेन्ट पाँच वर्ष की थीं तभी उनके पिता का देहान्त हो गया।

पिता की मृत्यु के बाद एनी बेसेन्ट की माता को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वे एक होटल चलाती थीं और उसी की आमदनी से अपनी पुत्री को हैरो में शिक्षा दिला रही थीं।

एनी बेसेन्ट स्वतन्त्र विचारक थीं। अपने पादरी पति फ्रैंक बीसेन्ट के सम्पर्क मंे आते ही उनके मन में ईसाई धर्म के उपदेशों के विषय में शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं। दाम्पत्य जीवन अधिक सुखमय नहीं था फिर भी एनी बेसेन्ट अपने कर्तव्य का पालन करती रहीं। उन्होंने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया। वे बड़ी रुचि और उत्साह से बच्चों के पालन-पोषण मंे लग गयीं। एक बार उनके दोनों बच्चे बीमार पड़ गए। वे दिन-रात उनकी सेवा में लगी रहती थीं। बच्चे तो किसी प्रकार स्वस्थ हो गए पर उनका अपना स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और उनको जबर्दस्त मानसिक संघर्ष का सामना करना पड़ा।

सन् 1875 ई0 में थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना हुई। एनी बेसेन्ट उसकी सदस्या बन गयीं और आध्यात्मवाद के प्रचार के लिए अपने जीवन को अर्पित कर दिया। इस सोसाइटी के तीन प्रमुख उद्देश्य थे जिनके कारण एनी बेसेन्ट इस सोसाइटी में शामिल हुईं-

(1) जाति या धर्म का भेद-भाव किए बिना विश्व बन्धुत्व की स्थापना करना। (2) आर्य साहित्य और दर्शन के अध्ययन को आगे बढ़ाना। (3) प्रकृति के नियमों तथा मनुष्य में छिपी किन्तु सम्भव भौतिक शक्तियों की खोज-बीन करना। सन् 1893 ई0 में शिकागो में होने वाले सर्वधर्म सम्मेलन में एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसाइटी का प्रतिनिधित्व किया। जब वे थियोसोफिकल सोसाइटी के भारतीय सदस्यों के सम्पर्क में आयीं तब उन्होंने उनसे वादा किया कि वे भारत अवश्य आयेंगी।

46 वर्ष की उम्र में एनी बेसेन्ट भारत आयीं और फिर भारत की बनकर भारत में रह गयीं। उन्होंने भारत की सामाजिक और धार्मिक स्थिति का गहन अध्ययन किया। उन्होंने अनुभव किया कि भारत के विद्यालयों के पाठ्यक्रम में धार्मिक और नैतिक शिक्षा को भी सम्मिलित करने की आवश्यकता है। वे भारत के विद्वानों, विचारकों, धर्म-गुरुओं और समाज सुधारकों के सम्पर्क में आयीं तथा उनके साथ विचार-विमर्श किया। अडयार (तमिलनाडु), वाराणसी, मुम्बई, आगरा, लाहौर आदि स्थानों में जाकर उन्होंने भाषण दिए। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और शिक्षा प्रणाली में सुधार पर उनके भाषणों में विशेष बल रहता था। उन्होंने पिछड़ी जातियों के लिए स्कूल खुलवाने के प्रयत्न आरम्भ किए और इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा के अभियान में जुट गयीं।

सन् 1907 ई0 में एनी बेसेन्ट थियोसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्षा बन गयीं। अपने विचारों और सिद्धान्तों के प्रचार के लिए उन्होंने दो समाचार पत्रों का प्रकाशन आरम्भ कराया। एक था ''द कामन वील'' और दूसरा था ''न्यू इण्डिया''। इन समाचार पत्रों के माध्यम से उनके विचार जनता तक पहुँचने लगे।

एनी बेसेन्ट प्रभावशाली वक्ता, श्रेष्ठ लेखिका एवं सफल प्रचारक थीं। उन्होंने धर्म-शास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति और शिक्षा पर अनेक ग्रन्थों की रचना की। इन रचनाओं में उन्होंने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्राचीन गौरव का गुणगान किया है तथा राष्ट्रवाद को भी धर्म के मार्ग में ले जाने की प्रेरणा दी। उन्होंने श्रीमद्भागवत गीता का अनुवाद किया और ''हन्ट्स आन द स्टडी आफ भगवद्गीता'' नामक पुस्तक की रचना की। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि वे गीता के ज्ञान योग, कर्मयोग, शक्तियोग और इन्द्रिय निग्रह की साधना को स्वीकार करती थीं।

एनी बेसेन्ट व्यक्ति की स्वतन्त्रता की हिमायती थीं। उनका कहना था कि व्यक्ति को अपने चिन्तन के परिणामों को स्वतन्त्रता से व्यक्त करने का अधिकार होना चाहिए। सत्य का आचरण करके ही हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। वे भारत को समृद्ध राष्ट्र के रूप में देखना चाहती थीं। उनके मन में भारत के प्रति गहरा लगाव था। अपनी एक कविता में वे भारत के सम्बन्ध में कहती हैं-

हे पूर्ण राष्ट्र भारत ! भविष्य के भारत !

कितनी देर बाद तुम अपना पद प्राप्त करोगे ?

कितनी देर बाद तुम्हारे निवासी स्वतन्त्र जीवन बिताएंगे ?

कब तुम्हारी आत्मा अनन्त को समेट कर उसमें लीन हो जायेगी ?

एनी बेसेन्ट अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त महिला थीं। उनके अन्दर न्याय और सत्य के लिए संघर्ष करने वाली सशक्त आत्मा विद्यमान थी। जिस समय भारत ने स्वराज्य के लिए संघर्ष आरम्भ किया उस समय अनेक ऐसी शक्तियाँ थीं जो भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में नहीं स्वीकार करना चाहती थीं। एनी बेसेन्ट ने धर्म और अध्यात्म का मार्ग अपनाकर भारतीय राष्ट्रवाद की शक्ति बढ़ायी। उन्होंने स्वराज्य के आदर्श को भारत में लोकप्रिय बनाने का सराहनीय प्रयास किया। लोकहित को ही वह राज्य और राष्ट्र का लक्ष्य मानकर चलीं। उनके सम्बन्ध में हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने कहा था-
‘‘आज की पीढ़ी के लिए वह नाममात्र हो सकती हैं लेकिन मेरी और मेरे से पहले की पीढ़ी के लिए उनका बहुत बड़ा व्यक्तित्व था जिसने हम लोगों को बहुत प्रभावित किया। इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में उनका योगदान बहुत अधिक था। इसके अतिरिक्त वह उन लोगों में से थीं जिन्होंने हमारा ध्यान हमारी अपनी सांस्कृतिक धरोहर की ओर आकर्षित किया और हममें उसके प्रति गर्व पैदा किया।’’

अभ्यास

1.एनी बेसेन्ट का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

2.एनी बेसेन्ट को बचपन में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ?

3.एनी बेसेन्ट ने जनता की भलाई के लिए कौन-कौन से कार्य किए ?

पाठ - २०

स्वतंत्रता संग्राम की वीरांगनाएँ

रानी लक्ष्मीबाई

"भारतीय इतिहास में ऐसी अनेक वीर महिलाएँ हुई हैं, जिन्होंने बहादुरी तथा साहस के साथ युद्ध भूमि में शत्रु से लोहा लिया। इनमें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। रानी वीरता, साहस, दयालुता अद्वितीय सौन्दर्य का अनुपम संगम थीं। दृढ़ता, आत्मविश्वास व देशभक्ति उनके हथियार थे जिससे अंग्रेजों को मात खानी पड़ी।"

लक्ष्मीबाई को बचपन में सब प्यार से मनु बुलाते थे। मनु की आयु चार-पाँच वर्ष की थी कि उनकी माँ का देहान्त हो गया। मनु के पिता पुणे के पेशवा बाजीराव के दरबार में थे। मनु की देख-भाल के लिए उनके पिता उन्हें अपने साथ पेशवा बाजीराव के दरबार में ले जाते थे। अतः मनु का बचपन पेशवा बाजीराव के पुत्रों के साथ बीता। मनु उन्हीं के साथ पढ़ती थी। पेशवा बाजीराव के बच्चों को अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा दी जाती थी। उन बच्चों को देखकर मनु की भी शस्त्र-विद्या में रुचि उत्पन्न हुई। मनु ने बहुत लगन से तीर-तलवार चलाना, बंदूक चलाना और घुड़सवारी करना सीखा। घुड़सवारी, तीर-तलवार चलाना मनु के प्रिय खेल थे। वे इसमें इतनी निपुण हो गईं कि लोग इस नन्हीं बाला को देखकर आश्चर्य करते थे। वे स्वभाव से बहुत चंचल थीं इसी कारण सब प्यार से उन्हें 'छबीली' भी कहते थे। मनु का साहस और कौशल देखकर बाजीराव के पुत्र राना घोंडू पंत और तात्या टोपे भी आश्चर्य चकित रह जाते। मनु का विवाह झाँसी के महाराजा गंगाधर राव के साथ हुआ। विवाह के बाद उन्हें नाम दिया गया-रानी लक्ष्मीबाई। रानी लक्ष्मीबाई ने किले के अंदर ही व्यायामशाला बनवायी और शस्त्र चलाने तथा घोड़े की सवारी का अभ्यास करने की व्यवस्था की। घोड़ों की पहचान में वे बहुत निपुण मानी जाती थीं।

एक बार रानी के पास एक सौदागर घोड़े बेचने आया। उन घोड़ों में दो घोड़े एक जैसे दिखते थे। रानी ने उनमें से एक घोड़े का दाम एक हजार रुपये तथा दूसरे का दाम पचास रुपये

लगाया। सौदागर ने कहा-"महारानी दोनों घोड़े एक जैसे हैं फिर यह फर्क क्यों?" रानी ने उत्तर दिया "एक घोड़ा उन्नत किस्म का है जबकि दूसरे की छाती में चोट है।

रानी लक्ष्मीबाई नारी में अबला नहीं सबला का रूप देखती थीं। उन्होंने स्त्री सेना का गठन किया जिसमें एक से बढ़कर एक वीर साहसी स्त्रियाँ थीं। रानी ने उन्हें घुड़सवारी व शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण दिलाकर युद्ध कला में निपुण बनाया।

रानी के जीवन में बहुत से उतार-चढ़ाव आए। रानी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु यह आनन्द अल्पकाल तक ही रहा। कुछ महीने बाद ही शिशु की मृत्यु हो गई। जब राजा गंगाद्दर राव गंभीर रूप से बीमार हुए तो दुर्भाग्य के बादल और भी घने हो गए। उनके जीवित बचने की कोई आशा नहीं थी। दरबार के लोगों की सलाह पर उन्होंने अपने परिवार के पाँच वर्षीय बालक को गोद लेकर दत्तक पुत्र बना लिया। बालक का नाम दामोदर राव रखा गया। बालक को गोद लेने के दूसरे दिन ही राजा की मृत्यु हो गई। रानी पर दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा। इस विपत्ति के समय झाँसी राज्य को कमजोर जानकर अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिक चाल चली।

अंग्रेजों ने रानी को पत्र लिखा कि राजा के कोई पुत्र न होने के कारण झाँसी पर अब अंग्रेजों का अधिकार होगा। इस सूचना पर रानी तिलमिला उठीं। उन्होंने घोषणा की कि झाँसी का स्वतंत्र अस्तित्व है। स्वामिभक्त प्रजा ने भी उनके स्वर में स्वर मिला कर कहा हम अपनी झाँसी नहीं देंगे। अंग्रेजों ने झाँसी पर चढ़ाई कर दी। रानी ने भी युद्ध की पूरी तैयारी की। उन्होंने किले की दीवारों पर तोपें लगा दीं। रानी की कुशल रणनीति और किलेबन्दी देखकर अंग्रेजों ने दाँतों तले अँगुलियाँ दबा लीं। अंग्रेज सेना ने किले पर चारों ओर से आक्रमण कर दिया। आठ दिन तक घमासान युद्ध हुआ। रानी ने अपने महल के सोने व चाँदी का सामान भी तोप के गोले बनाने के लिए दे दिया।

रानी ने संकल्प लिया कि अंतिम साँस तक झाँसी के किले पर फिरंगियों का झंडा नहीं फहराने देंगी। लेकिन सेना के एक सरदार ने गद्दारी की और अंग्रेजी सेना के लिए किले का दक्षिणी द्वार खोल दिया। अंग्रेजी सेना किले में घुस आयी। झाँसी के वीर सैनिकों ने अपनी रानी के नेतृत्व में दृढ़ता से शत्रु का सामना किया। शत्रु की सेना ने झाँसी की सेना को घेर लिया। किले के मुख्यद्वार के रक्षक सरदार खुदाबख्श और तोपखाने के अधिकारी सरदार गुलाम गौस खाँ वीरतापूर्वक लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। ऐसे समय में रानी को उनके विश्वासपात्र सरदारों ने कालपी जाने की सलाह दी। रानी अपनी सेना को छोड़कर नहीं जाना चाहती थीं। लेकिन उनके सेनानियों ने उनसे अनुरोध करते हुए कहा "महारानी, आप हमारी शक्ति हैं। आपका जीवित रहना हमारे लिए बहुत जरूरी है। यदि आपको कुछ हो गया तो अंग्रेज सेना झाँसी पर अधिकार कर लेगी।" समय की गम्भीरता को देखते हुए, अपने राज्य की भलाई के लिए रानी झाँसी छोड़ने के लिए राजी हो गयीं। उन्हें वहाँ से

सुरक्षित निकालने के लिए एक योजना बनाई गयी। इस योजना में झलकारी बाई ने प्रमुख भूमिका निभाई थी।

झलकारी बाई

झलकारी बाई रानी की स्त्री सेना में सैनिक थीं। वह रानी की अन्तरंग सखी होने के साथ-साथ रानी की हमशक्ल भी थीं। अपने प्राणों की परवाह किए बगैर जिस प्रकार उसने रानी की रक्षा की यह अपने में एक अद्भुत कहानी है। वह रानी के एक सेना नायक पूरन कोरी की पत्नी थीं। रानी उसकी बुद्धिमत्ता एवं कार्यक्षमता से इतनी प्रभावित हुईं कि उन्होंने झलकारी बाई को शस्त्र संचालन तथा घुड़सवारी का प्रशिक्षण दिलाकर उसे सैन्य संचालन में दक्ष कर दिया। झलकारी बाई रानी के प्रति पूर्णतः समर्पित थीं। उनमें देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी थी। जब रानी को किले से सुरक्षित निकालने की योजना बनाई गई तो झलकारी बाई ने रानी के वेश में युद्ध करने के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया। रंग-रूप में रानी से समानता होने के कारण अंग्रेजों को भ्रमित करना आसान था। वे रानी की पोशाक पहन कर युद्ध करती हुई बाहर आ गईं। उनके रण कौशल व रंगरूप को देखकर अंग्रेज भ्रम में पड़ गए। उन्होंने वीरतापूर्वक अंग्रेजों का सामना किया और उन्हें युद्ध में उलझाए रहीं। इसी बीच रानी को बच निकलने का मौका मिल गया। दुर्भाग्य से एक गद्दार ने उन्हें पहचान लिया और अंग्रेज अधिकारी को सच्चाई बता दी। वास्तविकता जानकर अंग्रेज सैनिक रानी का पीछा करने निकल पड़े ।

झलकारी बाई की सच्चाई जानकर एक अंग्रेज स्टुअर्ट बोला-‘‘क्या यह लड़की पागल हो गयी है?’’ एक दूसरे अधिकारी ह्यूरोज ने सिर हिला कर कहा -‘‘नहीं स्टुअर्ट, यदि भारत की एक प्रतिशत स्त्रियाँ भी इस लड़की की तरह देश-प्रेम में पागल हो जाएँ तो हमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति सहित यह देश छोड़ना होगा।’’

जनरल ह्यूरोज ने झलकारी बाई को बंदी बना लिया परन्तु एक सप्ताह बाद छोड़ दिया। अपनी मातृभूमि एवं महारानी लक्ष्मीबाई की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने वाली झलकारी बाई शौर्य एवं वीरता के कारण देशवासियों के लिए आदर्श बन गईं।

अपना यश, कीर्ति लिए,

जब आहुति देती है नारी
तब-तब पैदा होती है
इस धरती पर झलकारी।।

उधर झाँसी छोड़ने के बाद रानी अपने कुछ सैनिकों के साथ अपना घोड़ा कालपी की तरफ दौड़ा रही थीं। पीछा करते सैनिकों ने रानी को देखते ही उन पर गोलियाँ दागनी शुरू कर दीं। एक गोली रानी की जाँघ में जा लगी। उनकी गति-मंद पड़ते ही अंग्रेज सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। दोनों दलों में भयंकर संघर्ष हुआ। रानी घायल और थकी हुई थीं, परन्तु उनकी वीरता और साहस में कोई कमी नहीं आयी थी। रानी को विवशतावश युद्ध क्षेत्र छोड़ना पड़ा था। परन्तु हर पल उन्हें अपने साथियों और सैनिकों की सुरक्षा की चिन्ता थी। इस संघर्ष के दौरान एक अंग्रेज घुड़सवार ने रानी की सखी व सैनिक मुन्दर पर हमलाकर उसे मार दिया। यह देखकर रानी क्रोध से तमतमा उठीं। उन्होंने उस घुड़सवार पर भीषण प्रहार किया और उसे मृत्यु के घाट उतार दिया।

कालपी की ओर घोड़ा दौड़ाते हुए अचानक मार्ग में एक नाला आया। नाले को पार करने के प्रयास में घोड़ा गिर गया। इस बीच अंग्रेज घुड़सवार निकट आ गए। एक अंग्रेज ने रानी के सिर पर प्रहार किया और उनके हृदय में संगीन से वार किया। गम्भीर रूप से घायल होने पर भी वे वीरतापूर्वक लड़ती रहीं। अन्ततः अंग्रेजों को रानी व उनके साथियों से हार मानकर मैदान छोड़ना पड़ा। घायल रानी को उनके साथी बाबा गंगादास की कुटिया में ले गए। पीड़ा के बावजूद रानी के चेहरे पर दिव्य तेज था। अत्यधिक घायल होने के कारण रानी वीरगति को प्राप्त हो गईं और क्रान्ति की यह ज्योति सदा के लिए लुप्त हो गयी।

आज भी उनकी वीरता के गीत गाये जाते हैं-

"बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।"

अभ्यास

1.मनु के बचपन के प्रिय खेल कौन-कौन से थे ?
2.अंग्रेजों ने झाँसी को किस बहाने से हथियाना चाहा ?
3.झलकारी बाई ने रानी के वेश में युद्ध करने के लिए स्वयं को क्यों प्रस्तुत किया ?
4.“क्या यह लड़की पागल हो गयी है”-यह वाक्य अंग्रेज अधिकारी स्टुअर्ट ने क्यों कहा होगा?
5.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-
क.छोटी उम्र में ही मनु शस्त्र चलाने में...............हो गईं।
ख.लक्ष्मीबाई के पति का नाम ....था।
ग.झलकारी बाई रानी की ....थी।
घ.रानी झलकारी बाई की ....से प्रभावित हुईं ।
6.नीचे लिखे विकल्पों में से सही उत्तर छाँटकर लिखिए-
अंग्रेज युद्ध क्षेत्र में झलकारी बाई को देखकर भ्रम में पड़ गए क्योंकि-
क.वह बहुत सुन्दर थी।
ख.अंग्रेज उसका चेहरा नहीं देख सके।
ग.वह रणकौशल व रंगरूप में रानी के समान थीं।
घ.उन्होंने पहले कभी रानी को नहीं देखा था।
7.इस पाठ में रानी लक्ष्मीबाई के किन गुणों को उभारा गया है, सूची बनाइए।
8.पाठ में आये मुहावरों को ढूँढिए और अपने वाक्य में प्रयोग कीजिए।
9.यदि मौका मिले तो आप कौन से साहसिक खेल सीखना चाहेंगे ?

पाठ - 21

हमारे महान वनस्पति-विज्ञानी

(वनस्पतिशास्त्री)

इस पाठ में ऐसे दो महान भारतीय वैज्ञानिकों का परिचय दिया जा रहा है, जो सामान्य जनों की तरह संघर्षों के बीच पनपे-बढ़े और अपने आविष्कारों से विश्व को चमत्कृत कर दिया। जिन्होंने जीव-जगत् की भाँति वनस्पतियों में भी प्राणों का अस्तित्व प्रमाणित कर, लाखों वर्ष पुराने जीवाश्मों की खोज कर, विश्व-समुदाय के समक्ष भारत का मस्तक ऊँचा उठाया।

जगदीश चन्द्र बसु

बच्चों! क्या आपने कभी विचार किया है कि पेड़-पौधे भी हमारी तरह सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं ? आपको यह बात आश्चर्यजनक लग सकती है, लेकिन है सच। पेड़-पौधे भी हमारी तरह संवेदनशील हैं। उनमें भी जीवन है। वे भी सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। इस बात का पता सर्वप्रथम महान भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने लगाया।

जगदीश चन्द्र बसु का जन्म बंगाल के मैमन सिंह जिले के फरीदपुर गाँव में 30 नवम्बर सन् 1858 को हुआ। इनके पिता भगवान चन्द्र बसु फरीदपुर के डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। बालक जगदीश को घोड़े पर सवारी करना, रोमांचकारी व साहसपूर्ण कहानियाँ सुनना अत्यन्त प्रिय था।

नौ वर्ष की उम्र में जगदीश घर छोड़कर आगे की पढ़ाई के लिए कोलकाता चले गए। वहाँ उनके दोस्तों में शामिल हुए मेढक, मछलियाँ, गिलहरियाँ और साँप। वह जीव-जन्तु, पेड़-पौधों में विशेष रुचि लेने लगे। वे पौधों की जड़ें उखाड़कर देखते रहते। तरह-तरह के फल-फूल के पौधे उगाते। विद्यार्थी जीवन में ही उनका मन स्वाभाविक रूप से पेड़-पौधों की दुनिया में पूरी तरह रम गया। वह यह जानने को उत्सुक रहने लगे कि क्या पेड़-पौधों में भी हमारी तरह जीवन है ? इस बात का पता लगाने के लिए वे जी-जान से जुट गए।

सेंट जेवियर्स कॉलेज, कोलकाता से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद बसु आगे की पढ़ाई के लिए इंग्लैण्ड चले गए। उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के क्राइस्ट चर्च कॉलेज से

1884 में भौतिकी, रसायन और वनस्पति विज्ञान में विशेष शिक्षा ली तथा बी0 एस0 सी0 की उपाधि प्राप्त की।

सन् 1885 में भारत लौटने पर उनकी नियुक्ति कोलकाता के प्रेसिडेन्सी कॉलेज में प्राध्यापक पद पर हो गई। वहाँ उन्हें अंग्रेज प्राध्यापकों की अपेक्षा आधा वेतन देने की बात कही गई। बसु ने पद तो स्वीकार कर लिया, किन्तु विरोध स्वरूप आधा वेतन लेने से इनकार कर दिया। अन्ततः अंग्रेजों ने उनकी योग्यता और परिश्रम को देखते हुए पूरा वेतन देना स्वीकार कर लिया। यह कार्य के प्रति उनकी निष्ठा और स्वाभिमान का द्योतक है।

वह महत्त्वपूर्ण शोध जिसके लिए जगदीश चन्द्र बसु हमेशा याद किए जायेंगे वह था-पौधों में प्राण और संवेदनशीलता का पता लगाना। इसके लिए उन्होंने-'क्रेस्कोग्राफ' नामक अति संवेदनशील यंत्र बनाया। इस यंत्र की सहायता से पौधों की वृद्धि और उनके किसी भाग को काटे या चोट पहुँचाए जाने पर पौधों में होने वाली सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं का पता लगाया जा सकता है।

जगदीश चन्द्र बसु की इस खोज से दुनिया आश्चर्यचकित रह गई। अंग्रेज सरकार ने इस खोज पर उन्हें 'सर' की उपाधि दी। महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटीन ने प्रोफेसर बसु के अनुसंधानों पर मुग्ध होकर कहा था, " जगदीश चन्द्र बसु ने जो अमूल्य तथ्य संसार को भेंट किए हैं, उनमें से कोई एक भी उनकी विजय पताका फहराने के लिए पर्याप्त है।"

जगदीश चन्द्र बसु न केवल जीव विज्ञानी थे, अपितु भौतिकी के क्षेत्र में भी उनकी गहरी पैठ थी। 'बेतार के तार' का आविष्कार सही अर्थों में प्रोफेसर बसु ने ही किया था क्योंकि सन् 1895 में मारकोनी द्वारा इस आविष्कार का पेटेन्ट कराने से पूर्व ही वे अपने 'बेतार के तार' का सफल सार्वजनिक प्रदर्शन कर चुके थे।

कोलकाता में उनके द्वारा स्थापित 'बसु विज्ञान मन्दिर' उनकी परम्परा को आज भी आगे बढ़ा रहा है। इस संस्थान के उद्घाटन अवसर पर उन्होंने कहा था-'यह प्रयोगशाला नहीं मंदिर है।' अपनी अन्तिम साँस वर्ष 1937 तक वे विज्ञान के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ इस संस्थान में कार्य करते रहे।

प्रोफेसर बसु अपने अथक परिश्रम और अनुसंधानों के कारण विश्व के प्रख्यात वैज्ञानिकों में गिने जाते हैं। उनका कहना था, "हमें अपने कार्य के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। स्वयं अपना कार्य करना चाहिए, किन्तु यह सब करने से पूर्व अपना अहंकार और घमण्ड त्याग देना चाहिए।"

प्रोफेसर बीरबल साहनी

उनका बस्ता डाक टिकटों, कंकड़-पत्थरों का छोटा-मोटा संग्रहालय लगता था। पौधे इकट्ठा करना और पतंग उड़ाना उन्हें बेहद प्रिय थे। डाक टिकट संग्रह करने की धुन के चलते अक्सर वह आद्दे रास्ते तक जाकर पोस्टमैन को पकड़ लेते, ताकि उनके भाई-बहन या और कोई टिकट न ले लें।

बचपन की इन रुचियों ने धीरे-धीरे वनस्पतियों और भूगर्भ के विस्तृत अध्ययन का रूप ले लिया और संसार के सामने ऐसी प्रतिभा का उदय हुआ जिसे प्रोफेसर बीरबल साहनी के नाम से 'भारतीय पुरा-वनस्पति का जनक' माना जाता है।

बीरबल साहनी का जन्म 14 नवम्बर, 1891 को पंजाब के भेड़ा (अब पाकिस्तान में) नामक कस्बे में हुआ। इनके पिता रुचिराम साहनी गवर्नमेण्ट कॉलेज, लाहौर में रसायन विज्ञान के अध्यापक थे। माता ईश्वरी देवी कुशल गृहिणी थी। बीरबल की पेड़-पौधों तथा भूगर्भ में रुचि देखकर पिता ने उन्हें बचपन से ही विज्ञान की आवश्यक जानकारियाँ देना आरम्भ कर दिया।

सन् 1911 में बीरबल साहनी कैम्ब्रिज में पढ़ने के लिए लंदन चले गए। वहाँ वे बड़ी सादगी से रहते। उन्हें अध्ययन हेतु नब्बे रुपये वार्षिक छात्रवृत्ति मिलती थी जिसमें वे अपना सारा खर्च चलाते थे। कैम्ब्रिज में बीरबल साहनी प्रोफेसर सीवर्ड के सम्पर्क में आए और उन्हें अपना गुरु मान लिया। प्रोफेसर सीवर्ड भी अपने इस होनहार शिष्य को अत्यन्त स्नेह देते थे।

लंदन से डी0एस-सी0 (डॉक्टर ऑफ साइंस) की उपाधि प्राप्त कर बीरबल साहनी 1919 में भारत लौट आए और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हो गए। वे छात्रों से अत्यन्त स्नेह करते तथा हर समय उनकी सहायता को तत्पर रहते। छात्र भी उनकी उदारता, विद्वता और सादगी से अत्यन्त प्रभावित रहते। काशी के बाद श्री साहनी लखनऊ आ गए।

प्रोफेसर साहनी शोध के लिए प्राप्त सामग्री एवं अपने शोध-पत्रों को बड़ी सावधानी से रखते थे। जब वे लखनऊ में थे उन्हीं दिनों गोमती नदी में भयानक बाढ़ आई। बाढ़ का पानी बड़ी तेजी से घर में घुसने लगा। घर के सभी सदस्य जहाँ घरेलू सामान और फर्नीचर

की सुरक्षा में लगे थे, वहीं प्रोफेसर साहनी अपने शोध-पत्रों और एक खोज में प्राप्त फॉसिल (जीवाश्म) के टुकड़ों को सँभालने में व्यस्त थे।

विशेष

- साठ लाख वर्ष प्राचीन जीवाश्मों की खोज।
- प्राचीन मुद्राओं की खोज। मुद्रा अनुसंधान पर 'नेल्सन राइट'' पदक की प्राप्ति।
- काशी व लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष रहे।
- चार वर्ष 'राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी' के सभापति तथा राष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थान में उपाध्यक्ष रहे।

प्रोफेसर बीरबल साहनी को भारतीय पुरा-वनस्पति का जनक माना जाता है। उन्होंने बिहार की राजमहल पहाड़ियों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण फॉसिल-पेन्टोजाइली की खोज की। इस प्रकार का दूसरा नमूना अभी तक नहीं मिल पाया है।

क्या है फॉसिल(जीवाश्म)-

अनेक पेड़-पौधे, जीव-जन्तु आदि लाखों वर्षों से भूकम्प आदि के कारण चट्टानों व पत्थरों के बीच दबे रहते हैं समय बीतने पर धीरे-धीरे इनकी छाप इन पत्थरों तथा चट्टानों पर पड़ जाती है। इसी बनावट के छुपे हुये पत्थरों को फॉसिल या जीवाश्म कहते हैं। विज्ञान की 'पुरा-वनस्पति विज्ञान' शाखा के अन्तर्गत इन जीवाश्मों का अध्ययन किया जाता है। अध्ययन द्वारा पता लगाया जाता है कि हजारों लाखों वर्ष पूर्व पेड़-पौधे या जन्तु किस प्रकार के थे, तथा उस समय की भू-वैज्ञानिक परिस्थितियाँ कैसी थीं। हमारे दैनिक जीवन की चीजों- शीशा, मिट्टी का तेल, कोयला, खनिज आदि की खोज में भी जीवाश्म अत्यन्त सहायक होते हैं।

प्रोफेसर बीरबल साहनी में वैज्ञानिक खोजों के प्रति अटूट लगाव था। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वनस्पति जगत के अनुसंधानों में लगा दिया। उनके मन में 'पुरा वनस्पति विज्ञान मन्दिर' की स्थापना करने की दृढ़ इच्छा थी। पण्डित नेहरू के सहयोग से उनका स्वप्न पूरा हुआ। लखनऊ स्थित 'साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पेलियोबॉटनी' आज भारत ही नहीं वरन् विश्व का महत्त्वपूर्ण शोध संस्थान है। कौन जानता था कि इस संस्थान के शिलान्यास के ठीक सात दिन बाद ही प्रोफेसर साहनी इस संसार से विदा ले लेंगे। 9 अप्रैल सन् 1949 को यह महान विज्ञानी स्वर्ग सिधार गए। संस्थान के उद्घाटन के समय जिस स्थान पर खड़े होकर उन्होंने अपना भाषण दिया था, वहीं उनकी समाधि बनाई गई है। उनके द्वारा स्थापित 'श्री बीरबल साहनी पेलियोबॉटनिक संस्थान' देश का ऐसा शीर्षस्थ शोध-संस्थान है जहाँ उनकी अमूल्य द्दरोहर आज भी सुरक्षित है। इस महान वैज्ञानिक की स्मृति में भारत के सर्वश्रेष्ठ वनस्पति वैज्ञानिक को 'बीरबल साहनी पदक' प्रदान किया जाता है।

पारिभाषिक शब्दावली:-

- बेतार का तार-वायरलेस

□पेटेण्ट: अपने द्वारा की गई खोज को पंजीकृत करा लेना ताकि अन्य कोई उसे अपनी खोज न बना सके।

अभ्यास

1.जगदीश चन्द्र बसु ने सर्वप्रथम किस बात का पता लगाया ?

2.जगदीश चन्द्र बसु ने आधा वेतन लेना स्वीकार क्यों नहीं किया ?

3.बीरबल साहनी को किसका जनक माना जाता है ?

4.नीचे लिखे वाक्यों पर सही (√) अथवा गलत (ग्) का चिह्न लगाइए-

क.जगदीश चन्द्र बसु ने क्रेस्कोग्राफ का आविष्कार किया।

ख.जगदीश चन्द्र बसु का मन चित्रकला में अधिक लगता था।

ग.बीरबल साहनी की स्मृति में 'बीरबल साहनी पदक' दिया जाता है।

घ.बीरबल साहनी ने कोलकाता में 'साहनी इंस्टीट्यूट' की स्थापना की।

5.नीचे दिए विकल्पों में सही उत्तर छाँटिए-

क.जगदीश चन्द्र बसु ने सर्वप्रथम पता लगाया कि-

□पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है।

□पेड़-पौधे निर्जीव होते हैं।

□पेड़-पौधों में जीवन है, वे भी हमारी तरह सुख-दुःख का अनुभव करते हैं।

ख.बीरबल साहनी के मन में दृढ़ इच्छा थी-

□वनस्पति विज्ञान पर पुस्तक लिखने की।

□घर में एक बाग लगाने की।

□पुरा-वनस्पति विज्ञान मन्दिर की स्थापना करने की।

योग्यता विस्तार:- पता कीजिए-

□इन वैज्ञानिकों के जीवन के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त कीजिए।

□भारत के अन्य महान वैज्ञानिकों के जीवन के बारे में जानिए।

पाठ - 22

बाल गंगाधर तिलक

सन् 1857 की क्रान्ति भारतीय इतिहास में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इस क्रान्ति से एक वर्ष पूर्व 1856 में 23 जुलाई को भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित रत्नागिरी के एक गाँव में बाल गंगाधर तिलक का जन्म हुआ।

तिलक के पिता गंगाधर राव पहले एक स्कूल के अध्यापक थे और बाद में प्राथमिक विद्यालयों के निरीक्षक बन गए थे। तिलक को पिता से विद्या और माता से धार्मिक भावना के संस्कार मिले थे। जब वे पुणे के सिटी स्कूल के छात्र थे तब कक्षा में शिक्षक द्वारा दिये गए गणित के प्रश्नों को कापी पर न करके वह मौखिक ही हल कर देते थे।

दस वर्ष की आयु में माता की छाया उनके सिर से उठ गयी और सोलह वर्ष की आयु में पिता चल बसे। जो कुछ धन उनके पास था उससे छोटे भाई, भतीजों को उन्होंने शिक्षा दिलायी। उन्हें अत्यन्त आर्थिक संकट में दिन गुजारने पड़े फिर भी बाधाओं को झेलकर वे आगे बढ़ते गये।

तिलक का विवाह सोलह वर्ष की आयु में बल्लाल बाल की पुत्री तापी बाई से हुआ। 1877 में उन्होंने बी0ए0 परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। दो वर्ष बाद एल0एल0बी0 की उपाधि भी प्राप्त की। तभी से तिलक ने अपना जीवन सार्वजनिक सेवा के लिए अर्पित कर दिया था।

तिलक एक आदर्श शिक्षक और सफल पत्रकार थे। सन् 1879 में उन्होंने अपने दो अन्य मित्रों के साथ "न्यू इंगलिश स्कूल" की स्थापना की। यह स्कूल राजकीय विद्यालयों से भी उत्कृष्ट शिक्षा देने और राष्ट्रीय विचारों वाले सच्चे, देशभक्त तैयार करने के उद्देश्य से खोला गया था। चार वर्षों में ही छात्रों की संख्या 1009 हो गयी।

सन् 1881 में तिलक की सामाजिक सेवा का दूसरा दौर चला। उन्होंने मराठी भाषा में केसरी समाचार पत्र का प्रकाशन किया। अंग्रेजी भाषा में "मराठा" पत्र भी साथ निकलने

लगा।
यद्यपि तिलक सन् 1885 से ही सार्वजनिक कार्यों में सक्रिय भाग लेने लगे थे तथापि राजनीति में वे पहले सन् 1889 में आये। इस वर्ष उन्होंने मुम्बई में आयोजित कांग्रेस तथा मुम्बई प्रदेश कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया। यह संवैधानिक आन्दोलनों का युग था। समाज सुधारकों का दल अंग्रेजों का तीव्र विरोध नहीं कर रहा था, परन्तु तिलक जनता को उत्तेजित कर खुलकर विरोध करने के पक्ष में थे।
तिलक के प्रस्ताव पर ''दक्षिण शिक्षा समाज'' नामक संस्था बनायी गयी। तिलक पहले राजनीतिक स्वतन्त्रता चाहते थे, फिर समाज सुधार किन्तु उनके मित्र समाज सुधार को प्रथम स्थान देते थे। इसी बात को लेकर मित्रों में मतभेद हुआ और तिलक ने ''दक्षिण शिक्षा समाज'' से त्याग पत्र दे दिया।
कांग्रेस के सदस्य यद्यपि मिल-जुलकर काम करते थे तथापि उनमें भी मतभेद शुरू हो गए थे। सन् 1907 में कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में हुआ। इसमें कांग्रेस के सदस्यों मंे ही परस्पर फूट पड़ गयी और कांग्रेस दो दलों में बँट गयी-उदारवादी दल और उग्रवादी दल। गोपाल कृष्ण गोखले उदारवादी दल में थे और तिलक उग्रवादी दल में। तिलक उस समय की अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवस्था में शीघ्र परिवर्तन लाना चाहते थे। वे बार-बार राजनीतिक स्वाधीनता और विदेशी माल के बहिष्कार के संकल्प दोहराते थे किन्तु उदारवादी दल के सदस्य तत्कालीन नियमों में ही सुधार के पक्षपाती थे।
तिलक पर अंग्रेजों द्वारा कई बार राजद्रोह का आरोप लगाया गया। इन पर राजद्रोह का पहला मुकदमा ''केसरी'' में प्रकाशित उनके लेख ''वीरपूजा'' के कारण चलाया गया था परन्तु न्यायालय के निर्णय के बाद भी तिलक ने यही कहा कि ''मेरे लेख से राजद्रोह की कोई झलक नहीं मिलती। मैं निर्दोष हूँ।''
न्यायालय द्वारा उन्हें 18 माह की कठोर सजा दी गयी। जनता ने इस दण्ड को ''न्याय की हत्या'' घोषित किया और उसकी निन्दा की। कई अंग्रेज तथा भारतीय विद्वानों ने तिलक की रिहाई की माँग की और निश्चित तिथि से छः माह पूर्व ही उन्हें रिहा कर दिया गया। इस बीच उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। सरकार की तिलक पर कड़ी नजर थी किन्तु तिलक भी राजनीतिक स्वतन्त्रता पाने के लिए कमर कस चुके थे। देश के नवयुवकों का समर्थन व सहयोग उन्हें प्राप्त था। कोलकाता मंे होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर एक सार्वजनिक सभा में गीता पर उनका भाषण सुनकर छात्रों ने उन्हें मानपत्र दिया तथा उनका निर्देशन प्राप्त करना चाहा। तब से वे ''लोकमान्य'' कहे जाने लगे।
सन् 1908 में उन्होंने नशाबन्दी आन्दोलन चलाकर सरकार की आबकारी नीति का विरोध किया। इसी प्रकार नमक पर कर का भी उन्होंने विरोध किया। गांधी जी का नमक-सत्याग्रह भी इसी समय प्रारम्भ हुआ। महाराष्ट्र की जनता इस समय नमक कर से बहुत असन्तुष्ट थी।

तिलक बड़े दूरदर्शी थे। वे जानते थे कि कांग्रेस के केवल पढ़े-लिखे तथा धनी वर्गों तक ही सीमित रहने से उनका उद्देश्य पूरा नहीं होगा। वह देश की स्वतन्त्रता चाहते थे। यह तभी सम्भव था जब कांग्रेस को निर्धन जनता के साथ जोड़ा जा सके। उन्होंने साधारण जनता की आवश्यकताओं को ध्यान मंे रखकर अनेक कार्यक्रम चलाये। गणपति उत्सव तथा शिवाजी उत्सव इन दो सामूहिक कार्यक्रमों के माध्यम से उन्होंने भारतीय जनता में आत्म-विश्वास जाग्रत किया और उनका मनोबल बढ़ाया। ये उत्सव ही राजनीतिक चेतना के केन्द्र बन गए। उन्हांेने धार्मिक उत्सव का आधार लेकर राजनीति की जड़ें मजबूत की। इस प्रकार तिलक को स्वदेशी आन्दोलन का सच्चा जन्मदाता कहा जा सकता है।

सन् 1908 मंे, केसरी में उनका एक लेख छपा ''देश का दुर्भाग्य''। इस लेख के कारण उन पर फिर राजद्रोह का आरोप लगा और उन्हें छः वर्ष की सजा भोगनी पड़ी। तिलक पर लगे राजद्रोह के झूठे आरोप को सुनकर भारत के मजदूरों ने छः दिन की हड़ताल की। भारत के मजदूर आन्दोलन के इतिहास में यह प्रथम हड़ताल थी। तिलक को बर्मा (म्याँमार) के माण्डले जेल में भेज दिया गया। जेल में तिलक को एकाकी जीवन बिताना पड़ा। वहाँ उन्होनंे ''गीता रहस्य'' नामक विश्वविख्यात पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने देश की राजनीति को स्वराज्य की ओर उत्प्रेरित किया। तिलक ने जनता को बताया कि कर्म का राष्ट्रीय फल ''स्वराज्य'' है।

तिलक में असीम सहिष्णुता थी। देश के लिए उन्होंने अनेक यातनाएँ भोगीं। जब वह माण्डले जेल में थे तभी उन्हें अपनी पत्नी के निधन का तार मिला। उस समय उन्होंने अपने बच्चों को आश्वासन भेजा कि जब स्वयं उनके माता-पिता की मृत्यु हुई थी तब वे बहुत छोटे थे। अतः बच्चों को उनसे शिक्षा लेनी चाहिए और अपना समय शोक में नहीं व्यतीत करना चाहिए। उन्हें साहस के साथ परिस्थितियों का सामना करना चाहिए।

जेल से छूटने के बाद वे पुनः देश सेवा में लग गए। उन्होंने जनता को स्वशासन की प्रेरणा दी और होमरुल लीग की स्थापना की। वे देश में अपना शासन और अपनी व्यवस्था चाहते थे। सन् 1906 में मुस्लिम लीग बन चुकी थी और विदेशी शासन उसे कांग्रेस के विरुद्ध भड़का रहा था। श्रीमती एनी बेसेन्ट कांग्रेस में सम्मिलत हो गयी थीं। होमरुल लीग की विधिवत् स्थापना 28 अपै्रल 1916 को हुई। वास्तव में यह कार्य तिलक के राजनीतिक जीवन की महान सफलता का द्योतक था। इसी समय कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ। इस समय तक उग्रवादी और उदारवादी दोनों दलों में समझौता हो गया था। उदारवादी धीरे-धीरे कांग्रेस से हट रहे थे और कांग्रेस में तिलक का प्रभुत्व जम रहा था। मुस्लिम लीग से भी कांग्रेस का समझौता हो गया था।

भारत की राष्ट्रीय भावनाओं को ब्रिटिश लोक पक्ष के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए तिलक इंग्लैण्ड गए। इंग्लैण्ड में भी तिलक ने पूर्ण स्वराज्य के लिए अनेक सभाओं का आयोजन किया। उन्होंने अनेक हैण्ड बिल भी प्रकाशित कराए। ब्रिटिश सरकार ने परिस्थितियों से

घबड़ाकर रोलेट एक्ट पास किया, जिसके परिणामस्वरूप भारत में भाषण तथा संगठन की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। गांधी जी ''रोलेट एक्ट'' को सहन न कर पाये और उन्होंने इसके विरोध में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इंग्लैण्ड में तिलक को जब यह समाचार मिला तो वे तत्काल भारत लौट आए।

मार्च 1919 में रोलेट एक्ट लागू हो गया। पूरे देश में इसके विरुद्ध नारे लगाये गए। दिनांक 6 अप्रैल को विभिन्न भागों में हड़तालें हुईं और प्रदर्शन किए गये। पंजाब में इसका विशेष विरोध हुआ। प्रमुख कांग्रेसी नेता सत्यपाल तथा सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार किया गया। इसके विरुद्ध जलियाँवाला बाग में 13 अप्रैल को एक सभा हुई, जहाँ अंग्रेज अफसर जनरल ओ डायर के आदेश से अचानक गोलियाँ बरसायीं गयीं और निकास द्वार बन्द कर दिया गया। फलतः भीषण नरसंहार हुआ। सर्वत्र हाहाकार मच गया। कांग्रेसी नेताओं ने इस हत्याकाण्ड की घोर निन्दा की।

तिलक पूर्ण स्वराज्य हेतु निरन्तर संघर्ष करते रहे। लगातार अथक परिश्रम, माण्डले जेल की यातना और फिर इंग्लैण्ड की ठण्डक ने इनके शरीर को जर्जर कर दिया था। ये रुग्ण रहने लगे। जुलाई 1920 ई0 के प्रारम्भ में उन्हें मलेरिया हुआ, अन्तिम सप्ताह में निमोनिया हो गया और उनकी दशा बिगड़ने लगी। बुलन्द आवाज मन्द पड़ने लगी। दृष्टि और श्रवण-शक्ति मन्द हो गयी। सभी उपचार निरर्थक सिद्ध हुए। अन्ततः 1 अगस्त 1920 को भारतीयों को पूर्ण स्वराज्य हेतु उत्प्रेरित कर भारत माता का यह सपूत सदा के लिए सो गया। इनकी मृत्यु के अवसर पर जनसमूह की बाढ़ को देखकर विट्ठल भाई पटेल ने कहा था-

''राजनीति को आराम कुर्सी वाले राजनीतिज्ञों से जनता तक ले आने का श्रेय लोकमान्य तिलक को ही है। उनकी उँगली राष्ट्र की नाड़ी पर थी। वह जानते थे कि स्वतन्त्रता संग्राम में त्याग और कष्ट झेलने की क्षमता जनता में कितनी है। इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाया। वे सच्चे अर्थों में भारत के निर्माता थे।''

अभ्यास

1.बाल गंगाधर का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

2.बाल गंगाधर तिलक स्वराज्य के मन्त्रदाता थे इस कथन की पुष्टि करिए।

3.बाल गंगाधर तिलक ने किन पत्रों का सम्पादन किया ?

4.भारत की स्वाधीनता के लिए तिलक के योगदान का वर्णन करिए।

पाठ - 23

भारत के महान शिक्षाविद्

हमारे देश में समय-समय पर अनेक विद्वान पैदा होते रहे हैं। इन विद्वानों ने ज्ञान के विविध क्षेत्रों में अनेक कार्य किए। सामाजिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक मनीषियों ने अमूल्य योगदान दिया है। ऐसे ही शिक्षाविदों में पंडित मदनमोहन मालवीय तथा सर सैय्यद अहमद खाँ का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

पण्डित मदन मोहन मालवीय

पंडित मदन मोहन मालवीय का जन्म 25 दिसम्बर 1861 को इलाहाबाद में हुआ। इनके पिता बृजनाथ मालवीय ने इनकी प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था 'धर्म ज्ञानोपदेश पाठशाला' में करायी। इसके बाद इन्हें 'विद्याधर्म प्रवर्धिनी' में प्रवेश दिलाया गया। मदन मोहन अत्यन्त मेधावी छात्र थे। अतः इन्हें शिक्षकों का भरपूर स्नेह मिला। इसी विद्यालय के शिक्षक देवकीनन्दन जी की मालवीय के व्यक्तित्व को निखारने में प्रमुख भूमिका रही। इन्हीं की प्रेरणा से वे एक कुशल वक्ता बने।

मालवीय जी के घर की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। इनके पिता बड़ी कठिनाई से इन्हें स्नातक तक शिक्षा दिला पाये। घर की दशा को देखते हुए मालवीय जी ने सरकारी हाईस्कूल में शिक्षक के पद पर कार्य करना आरम्भ कर दिया। अपनी अद्भुत वक्तृता एवं शिक्षण शैली के कारण वे अच्छे एवं लोकप्रिय शिक्षक के रूप में विख्यात हो गए।

मालवीय जी ने भारतीय समाज की गरीबी को समीप से देखा था। आरम्भ से ही उनके मन में समाज-सेवा की भावना भर गई थी। वे लोगों की सहायता विभिन्न प्रकार से करते थे। उनका दृढ़ मत था कि भारत की गरीबी तभी दूर हो सकती है जब यहाँ की जनता शिक्षित और प्रबुद्ध हो तथा उनका अपना शासन हो। मालवीय जी देशभक्ति को धर्म का ही एक अंग मानते थे। वे धार्मिक संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे। वे देश की प्रगति एवं उत्थान के लिए सर्वस्व त्याग एवं समर्पण की भावना के पोषक थे।

सन् 1902 में संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) एसेम्बली के चुनाव में मालवीय जी सदस्य निर्वाचित हुए। अपनी सूझ-बूझ, लगन और निष्ठा के कारण उन्हें यहाँ भी पर्याप्त सम्मान मिला। सन् 1910 से 1920 तक वे केन्द्रीय एसेम्बली के सदस्य भी रहे। 1931 ई0 में लंदन में आयोजित द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। यहाँ उन्होंने खुलकर भारतीय पक्ष को सम्मेलन में प्रस्तुत किया। उन्होंने सम्मेलन में साम्प्रदायिकता का विरोध किया और सामाजिक सद्भाव तथा समरसता पर जोर दिया।

मालवीय जी देश से निरक्षरता को दूर करने और शिक्षा के व्यापक प्रसार को देश की उन्नति के लिए आधारशिला मानते थे। अतः उन्होंने शिक्षा पर विशेष बल दिया। वे स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। शिक्षा सम्बन्धी अपनी धारणा को साकार करने के लिए उन्होंने एक महान विश्वविद्यालय की स्थापना की योजना बनाई। इसके लिए उन्होंने देशवासियों से धन माँगा।

अपनी सामर्थ्य के अनुसार लोगों ने इस पुण्य कार्य में सहयोग किया। तत्कालीन काशी नरेश ने विश्वविद्यालय के लिए पर्याप्त धन तथा भूमि दी। अपनी ईमानदारी, लगन एवं परिश्रम के कारण उन्हें इस कार्य में सफलता मिली। सन् 1918 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी) की स्थापना की गई। यह विश्वविद्यालय आज भी भारत के विश्वविद्यालयों में प्रमुख है। जितने विषयों के अध्ययन की यहाँ व्यवस्था है उतनी एक साथ शायद ही कहीं हो। वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि बिना हिन्दी ज्ञान के देश की उन्नति सम्भव नहीं है।

पूरे जीवन अथक परिश्रम करने वाला भारत माँ का यह सपूत 1946 ई0 में सदा के लिए सो गया। अपनी कीर्ति के रूप में मालवीय जी भारतीयों के मन में आज भी जीवित हैं।

सर सैयद अहमद खाँ

सर सैयद अहमद खाँ का जन्म दिल्ली के एक समृद्ध एवं प्रतिष्ठित परिवार में 17 अक्टूबर 1817 ई0 में हुआ था। इनके पिता का नाम मीर मुत्तकी तथा माता का नाम मीर अजीजुन्निसा बेगम था। इनकी शिक्षा अरबी, फारसी, हिन्दी, अंग्रेजी के अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों द्वारा हुई। इन्होंने ज्योतिष, तैराकी तथा निशानेबाजी का भी अभ्यास किया।

सैयद अहमद खाँ पहले मुगल दरबार में नौकरी करते थे। बाद में मुगल दरबार छोड़कर वह अंग्रेजों की नौकरी करने लगे। विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए वे सन् 1876 ई0 में बनारस

के स्माल काजकोर्ट के जज पद से सेवानिवृत्त हुए। अंग्रेजों ने इनकी सेवा एवं निष्ठा को देखते हुए इन्हें, 'सर' की उपाधि से विभूषित किया।
अहमद साहब मितव्ययी थे। वे अपने वेतन का अधिकांश भाग अपनी माँ के पास भेज देते थे ताकि परिवार का खर्च चलता रहे। इन्होंने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को पास से देखा था और इस पर एक पुस्तक 'असबाबे बगावते हिन्द' (भारतीय विद्रोह के कारण) लिखकर यह बताया कि इस विद्रोह के कारण क्या थे। उनकी दृष्टि में विद्रोह का मूल कारण भारतीयों को कानून बनाने से दूर रखना था। वे एक विचारक और चिन्तक थे उन्होंने देखा कि भारतीय मुस्लिम समाज दिशा-निर्देश के अभाव में निरन्तर पिछड़ता जा रहा है। वे इस्लाम धर्मानुयायियों में बौद्धिक चेतना प्रदान कर उन्हें नयी दिशा देना चाहते थे। इसके लिए इन्होंने 'तहजीबुल एखलाक' नामक पत्रिका निकाली। उनका कहना था कि धर्मशास्त्रीय ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक विषयों और विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। यही कारण था कि उन्होंने उस समय प्रचलित पारम्परिक शिक्षानीति का विरोध किया। वे मानते थे कि शिक्षा का उद्देश्य छात्र की बौद्धिक चेतना को उजागर करना एवं उसके व्यक्तित्व का निखार करना है।
शिक्षा के विकास के लिए सैयद अहमद खाँ ने अनेक संस्थाएँ खोलीं। इनमें मुरादाबाद का एक फारसी मदरसा, साइंटिफिक सोसाइटी गाजीपुर, साइंटिफिक सोसाइटी अलीगढ़ आदि प्रमुख हैं। मुस्लिम समाज में आधुनिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्होंने 'मोहम्मडन एजुकेशनल कान्फ्रेन्स' की भी स्थापना की। सन् 1873 में एक अन्य समिति का गठन किया गया जिसका उद्देश्य अलीगढ़ में एक कालेज की स्थापना करना था। इस कालेज के लिए समाज के सभी वर्ग के लोगों ने चन्दा दिया। इस प्रकार 1875 ई0 में 'मोहम्मडन एंग्लों ओरिएंटल कालेज' की अलीगढ़ में स्थापना हुई। यही कालेज आगे चलकर 'अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय' के नाम से विकसित हुआ। भारतीय समाज के लिए सैयद अहमद खाँ की यह अमूल्य देन है।
मुक्त विचारों, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, साम्प्रदायिक सौहार्द के कारण उनका सर्वत्र सम्मान होता था। अंग्रेज सरकार ने प्रसन्न होकर इन्हें 'नाइट कमाण्डर आफ स्टार आफ इण्डिया' (के0 सी0 एस0 आई0) की उपाधि तथा एडिनबरा विश्वविद्यालय ने 'डाक्टर आफ लॉ' की मानद उपाधि से सम्मानित किया। 25 मार्च सन् 1898 ई0 को इस शिक्षाविद् का निधन हो गया।

अभ्यास

1.मालवीय जी की आरम्भिक शिक्षा कहाँ हुई ?
2.द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में मालवीय जी ने किस बात का विरोध किया ?
3.इन्होंने शिक्षा के प्रसार के लिए क्या किया ?
4.सर सैयद अहमद खाँ के अनुसार 1857 ई0 के विद्रोह का कारण क्या था ?
5.मुस्लिम समाज के उत्थान के लिए सर सैयद अहमद खाँ ने कौन-कौन से कार्य किए ?

6.शिक्षा के उत्थान में सैयद अहमद खाँ का क्या योगदान है ?
7.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-
क........................ की मालवीय के व्यक्तित्व को निखारने में प्रमुख भूमिका रही।
ख.मालवीय जी का मानना था कि .... धर्म का ही एक अंग है।
ग.सैयद अहमद खाँ समझते थे कि समाज तब सुधर सकता है जब .... के क्षेत्र में नया दृष्टिकोण अपनाया जाए।
घ.सैयद अहमद खाँ की भारत को सबसे बड़ी देन .... है।
योग्यता विस्तार-
जानकारी कीजिए-
मालवीय जी के राजनैतिक कार्यों के विषय में।

सैयद अहमद खाँ के विचारों को सूचीबद्ध कीजिए।

पाठ - 24

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर

'मेरा घर सब जगह है, मैं इसे उत्सुकता से खोज रहा हूँ।
मेरा देश भी सब जगह है, मैं इसे जीतने के लिए लडूँगा।
प्रत्येक घर में मेरा निकटतम सम्बन्धी रहता है,
मैं उसे हर स्थान पर तलाश करता हूँ।"
-गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर

शायद यह कोई तलाश ही थी कि वह अक्सर अपनी खिड़की से प्रकृति को घंटों एक टक निहारता रहता। उसे प्रकृति स्वयं से बात करती हुई प्रतीत होती। लगता जैसे खुला नीला आकाश, चहचहाते पक्षी, हरियाली, शीतल पवन और प्रकृति की हर वस्तु उसे अपने पास बुला रही है। वह कल्पना की मोहक दुनिया में खो जाता। यह दुनिया उसे बहुत ही सुंदर और मनोहारी लगती। यह उसका प्रकृति के प्रति आकर्षण और कल्पनाशीलता ही थी कि मात्र आठ वर्ष की आयु में ही वह कविता रचने लगा। उस समय किसी ने सोचा भी न था कि बड़ा होकर यह बालक महान साहित्यकार, चित्रकार और विचारक 'रवीन्द्र नाथ टैगोर' के नाम से विश्वविख्यात होगा।

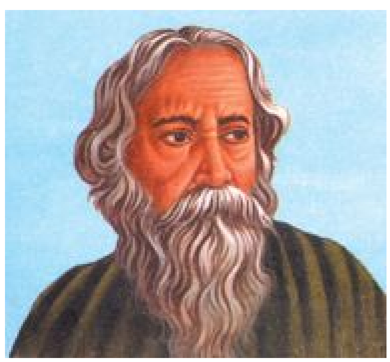

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म 7 मई सन् 1861 ई0 को कोलकाता में हुआ था। इनके पिता श्री देवेन्द्र नाथ टैगोर एवं माता शारदा देवी थीं। रवीन्द्र नाथ को घर के लोग प्यार से 'रवि' कहकर पुकारते थे।

उन दिनों बच्चों के लिए मनोरंजन के कोई विशेष साधन जैसे-फिल्में, टेलीविजन, वीडियो गेम आदि न थे। इसलिए नन्हा रवि अपनी कल्पना की दुनिया में मस्त रहता जिसमें उसके मित्र, राजकुमार, जादूगरनियाँ, परियाँ व राक्षस होते। प्रकृति से रवि को इतना प्रेम था कि सुबह उठते ही वह बगीचे की ओर भागता और ओस के कणों से गीली हरी घास का स्पर्श

करता। बगीचे में पत्तों पर पड़ती सूर्य की पहली किरण और ताजा खिले फूलों की महक उसका मन मोह लेती।

सन् 1868 में रवि को विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया। उसे वहाँ का परिवेश अच्छा नहीं लगा। विद्यालय उसे कारागार जैसा लगता क्योंकि वहाँ घर की तरह खिड़की से बाहर भी नहीं देख सकते थे। पाठ उबाऊ होते। पाठ तैयार न करके आने की सजा थी सिर पर ढेर सारी स्लेटें रखकर बेंच पर खड़ा होना या बेंत की मार सहना। नतीजा बालक रवि उस विद्यालय में नहीं टिक पाया। उन्हें दूसरे विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया। रवि के बड़े भाई हेमेन्द्र ने उन्हें पढ़ाने का दायित्व स्वयं ले लिया। उन्होंने कुश्ती, चित्रकारी, व्यायाम, संगीत और विज्ञान में विशेष रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया। कविता और संगीत ये दोनों ही गुण रवि में स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। रवीन्द्र ने बड़े होकर लिखा ''मुझे ऐसा कोई समय याद नहीं जब मैं गा नहीं सका।''

रवीन्द्र के माता-पिता ने जब देखा कि रवीन्द्र छोटी उम्र में ही कविता रचने लगा है तो वे बहुत प्रसन्न हुए। सत्रह वर्ष की उम्र में रवीन्द्र को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड भेज दिया गया। वे वहाँ से लेखन, चित्रकारिता आदि में और अधिक निपुण होकर भारत लौटे।

सन् 1883 में रवीन्द्रनाथ का विवाह मृणालिनी देवी से हुआ। रवीन्द्रनाथ के पिताजी ने उनसे कहा, ''रवि, मैं सोचता हूँ अब तुम अपनी जमींदारी संभालने योग्य हो गए हो। इस विषय में तुम्हारे क्या विचार हैं ?'' रवीन्द्रनाथ इस आमंत्रण से अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि वे सदा से प्रकृति के बीच रहना पसन्द करते थे। वे गाँव चले गए। यह पहला अवसर था जब वे ग्रामीण जनता के इतना अधिक निकट आए। उन्होंने अनुभव किया कि भारत की प्रगति के लिए देहातों का विकास किया जाना आवश्यक है। उन्होंने महसूस किया कि ग्रामीण जनता की समस्याओं को हल करने के लिए उनकी समस्याओं की पूरी-पूरी जानकारी होना और निरन्तर प्रयास किया जाना आवश्यक है। रवीन्द्रनाथ अपने काश्तकारों से इतना प्रेम करते थे कि वे कहा करते ''हमने पैगम्बर को तो नहीं देखा लेकिन अपने बाबू मोशाय को देखा है।'' रवीन्द्र ने जब देखा कि गरीब और अशिक्षित किसान अंधविश्वासों में जकड़े हुए हैं तो उन्होंने उनके लिए एक विद्यालय खोलने का निश्चय किया।

रवीन्द्र नाथ ने पत्नी मृणालिनी से पूछा,'' हमारे पास शान्तिनिकेतन (पश्चिम बंगाल में बोलपुर के निकट) में कुछ भूमि है। वहाँ पर विद्यालय खोलने के सम्बंध में तुम्हारे क्या विचार हैं।''

''यह अत्यंत पवित्र कार्य होगा''-मृणालिनी ने सहमति व्यक्त की। इसके बाद टैगोर को छेड़ने के अंदाज में उन्होंने कहा, ''लेकिन मैंने सुना है कि आपने तो कभी विद्यालय में पढ़ना पसंद नहीं किया।''

‘‘हाँ, सच है। लेकिन मैंने ऐसे विद्यालय को खोलने की योजना बनाई है जो चहारदीवारों से घिरा नहीं होगा।’’

वास्तव में उन्होंने जिस प्रकार से विद्यालय की कल्पना की उसे साकार भी किया। आज शान्तिनिकेतन के रूप में इसी प्रकार का विद्यालय हमारे सामने है। इस विद्यालय में कक्षाएँ खुले वातावरण में वृक्षों के नीचे लगती हैं। इस विद्यालय की स्थापना में रवीन्द्रनाथ को अत्यंत संघर्ष झेलने पड़े लेकिन वे प्रसन्न थे क्योंकि यह अत्यंत शुभ कार्य था।

शान्ति निकेतन की स्थापना के पश्चात् कई दुखद घटनाओं का ताँता लग गया। पहले रवीन्द्रनाथ की पत्नी, फिर पुत्री तथा पिता का निधन हो गया। कुछ दिनों बाद उनका छोटा बेटा भी चल बसा। रवीन्द्र ने अपने दुःख को हृदय की गहराइयों में दबाकर अपना सारा ध्यान विद्यालय चलाने में लगा दिया। उन्होंने विद्यालय में ऐसा शैक्षिक वातावरण बनाया जिसमें अध्यापक और विद्यार्थी एक साथ रहते और सभी मिल-जुलकर कार्य करते। विद्यालय का मुख्य उद्देश्य था शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग बनाना। शांतिनिकेतन बाद में ‘विश्वभारती विश्वविद्यालय’ के नाम से विख्यात हुआ। 28 दिसम्बर, 1921 को विश्वभारती विश्वविद्यालय देश को समर्पित करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा ‘‘यह ऐसा स्थान है जहाँ सम्पूर्ण विश्व एक ही घोंसले में अपना घर बनाता है।’’ उन्होंने भारत की समृद्धि के लिए आपसी भाईचारे एवं शान्ति को आवश्यक बताया। उन्होंने गाँव की उन्नति के लिए खेती-बारी एवं पशु-पालन के उन्नत तरीकों को अपनाने एवं दस्तकारी के विकास पर बल दिया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनात्मक प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके चिंतन, विचारों, स्वप्नों एवं आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति उनकी कहानियों, कविताओं, उपन्यासों, नाटकों, गीतों तथा चित्रों में होती थी। उनके गीतों में से एक-‘‘आमार सोनार बांगला’’ बांग्लादेश का राष्ट्रीय गीत है। उन्हीं का गीत-‘जन गण मन अधिनायक जय हे’ हमारा राष्ट्रगान है। रवीन्द्र के गीतों को ‘रवीन्द्र संगीत’ के नाम से जाना जाता है। इन गीतों का भारतीय संगीत में विशिष्ट स्थान है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी रवीन्द्र नाथ टैगोर के व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित थे। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने गांधी को ‘महात्मा’ कहा और गांधी ने रवीन्द्र नाथ को ‘‘गुरुदेव’’ की उपाधि दी।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को उनकी काव्यकृति ‘‘गीता॰जलि’’ के लिए सन् 1913 में साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला। यह सम्मान प्राप्त करने वाले वह प्रथम एशियाई व्यक्ति थे। इस पुरस्कार में मिली सम्पूर्ण राशि उन्होंने शान्तिनिकेतन में लगा दी। 1915 में अंग्रेजों द्वारा उन्हें ‘सर’ की उपाधि दी गई। अप्रैल 1919 में जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हुआ। इस बर्बर हत्याकाण्ड के विरोध में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अंग्रेज सरकार द्वारा प्रदत्त ‘सर’ की उपाधि का त्याग कर दिया।

रवीन्द्र नाथ टैगोर मातृभाषा के प्रबल पक्षधर थे। उनका कहना था- ’’जिस प्रकार माँ के

दूध पर पलने वाला बच्चा अधिक स्वस्थ और बलवान होता है, वैसे ही मातृभाषा पढ़ने से मन और मष्तिष्क अधिक मजबूत बनते हैं।"

समाज को अपने देश की महान विरासत की याद दिलाने के लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय इतिहास की कीर्तिमय घटनाओं तथा प्रसिद्ध भारतीय व्यक्तियों के बारे में कविताएँ तथा कहानियाँ लिखीं। इनमें से अनेक 'कविताएँ, कथाएँ और कहानियाँ' प्रकाशित हुईं।

7 अगस्त सन् 1941 को रवीन्द्रनाथ ने अन्तिम साँस ली।

अभ्यास

1.रवीन्द्र नाथ टैगोर के बचपन की रुचि के विषय में लिखिए।

2.रवीन्द्र का मन विद्यालय में क्यों नहीं लगता था ?

3.रवीन्द्र ने गरीबों की सहायता हेतु क्या निश्चय किया ?

4.शांतिनिकेतन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य क्या था ?

5.मातृभाषा के विषय में रवीन्द्रनाथ के क्या विचार थे ?

6.रवीन्द्रनाथ को नोबल पुरस्कार किस कृति के लिए मिला ?

7.महात्मा गांधी ने रवीन्द्रनाथ को किस उपाधि से सम्मानित किया ?

8.सही विकल्प चुनिए-

Ûमृणालिनी ने शान्तिनिकेतन की स्थापना का-

क. विरोध कियाख. स्वागत कियाग. कोई विचार व्यक्त नहीं किया

Ûरवीन्द्र नाथ ने 'सर' की उपाधि त्याग दी-

क.क्योंकि यह उनके योग्य न थी।

ख.जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के विरोध में।

ग.पिता की मृत्यु से दुखी होकर।

9.घटनाओं से सम्बन्धित सही तिथि पर सही (□) का चिह्न लगाइए-

क.रवीन्द्र नाथ टैगोर का जन्म हुआ-

1860 185118611865

ख.रवीन्द्र नाथ टैगोर को नोबल पुरस्कार मिला-

1913191419161920

योग्यता विस्तार:

‘राष्ट्रगान’ को नियम सहित गाने का अभ्यास विद्यालय में कीजिए। रवीन्द्र नाथ टैगोर के गीतों व कहानियों को पुस्तकालय से पुस्तक प्राप्त कर पढ़िए।

पाठ - 25

गोपाल कृष्ण गोखले

"मुझे भारत में एक पूर्ण सत्यवादी आदर्श पुरुष की तलाश थी, और वह आदर्श पुरुष गोखले के रूप में मिला। उनके हृदय में भारत के प्रति सच्चा प्रेम व वास्तविक श्रद्धा थी। वे देश की सेवा करने के लिए अपने सारे सुखों और स्वार्थ से परे रहे।"

महात्मा गांधी ने ये शब्द गोपाल कृष्ण गोखले के लिए कहे थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन देश और समाज की सेवा में अर्पित कर दिया।

गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म 9 मई सन् 1866 को रत्नागिरि के कोटलुक गाँव में हुआ। उनके पिता कृष्णाराव एवं माता सत्यभामा थीं। माता-पिता अत्यन्त सरल स्वभाव के थे। उन्होंने गोखले को बचपन से ही देश-जाति के प्रति निष्ठा, विनम्रता जैसे गुणों की शिक्षा दी।

पिता की असमय मृत्यु के कारण गोखले को शिक्षा प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बड़े भाई गोविन्द पन्द्रह रुपये महीना की नौकरी करते थे जिसमें से वे हर माह आठ रुपये गोखले को भेजने लगे ताकि उनकी शिक्षा में व्यवधान न पड़े। गोखले यह अनुभव करते थे कि भाई किस कठिनाई से उनकी सहायता कर रहे हैं। अत्यन्त संयमित जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने साधनों के अनुरूप अपने को ढाला। ऐसा समय भी आया जब वे भूखे रहे और उन्हें सड़क की बत्ती के नीचे बैठकर पढ़ाई करनी पड़ी। इन कठिन परिस्थितियों में भी उनका सम्पूर्ण ध्यान पठन-पाठन में लगा रहा। सन् 1884 में उन्होंने मुम्बई के एलफिंस्टन कॉलेज से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। गोखले का अंग्रेजी भाषा पर असाधारण अधिकार था। गणित और अर्थशास्त्र में उनकी अद्भुत पकड़ थी जिसके बल पर वे तथ्यों व आँकड़ों का विश्लेषण और उनकी विवेचना विद्वतापूर्ण ढंग से करते थे। इतिहास के ज्ञान ने उनके मन में स्वतंत्रता व प्रजातंत्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न की।

स्नातक होने के पश्चात् गोखले भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई0सी0एस0) इंजीनियरिंग या वकालत जैसे लाभदायक व्यवसायों में जा सकते थे, किन्तु इस विचार से कि बड़े भाई के ऊपर और आर्थिक बोझ न पड़े उन्होंने इन अवसरों को छोड़ दिया । वे सन् 1885 में पुणे के

न्यू इंगलिश कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगे। इस कार्य में उन्होंने स्वयं को जी-जान से लगा दिया और एक उत्कृष्ट शिक्षक साबित हुए। अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार और ज्ञान से वे छात्रों के चहेते बन गए। उन्होंने अपने सहयोगी एन0 जे0 बापट के साथ मिलकर अंकगणित की एक पुस्तक संकलित की जो अत्यन्त लोकप्रिय हुई। इस पुस्तक का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

सन् 1886 में बीस वर्ष की उम्र में गोपाल कृष्ण गोखले ने सक्रिय रूप से समाज सेवा और राजनीति में प्रवेश कर लिया। इससे पूर्व 'डेकन एजूकेशनल सोसाइटी' में अपनी गतिविद्दियों के कारण वे सार्वजनिक जीवन से सम्बंधित उत्तरदायित्व वहन करने की कला में महारथ हासिल कर ही चुके थे। उन्होंने 'अंग्रेजी हुकूमत के आधीन' विषय पर कोल्हापुर में अपना प्रथम भाषण दिया। अभिव्यक्ति और भाषा प्रवाह के कारण इस भाषण का जोरदार स्वागत हुआ। गोखले लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जगाने के लिए शिक्षा को आवश्यक मानते थे। उनकी मान्यता थी कि शिक्षा ही राष्ट्र को संगठित कर सकती है।

गोखले विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए सामाजिक जीवन में चेतना का संचार करते रहे। गरीबों की स्थिति में सुधार के लिए 1905 में गोखले ने 'सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी' की स्थापना की। शीघ्र ही यह संस्था समाज सेवा करने को तत्पर युवा, उत्साही और निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण स्थल बन गई। इनमें अधिकांश कार्यकर्ता स्नातक थे। आदिवासियों का उत्थान करना, बाढ़ व अकाल पीड़ितों की मदद करना, स्त्रियों को शिक्षित करना और विदेशी शासन से मुक्ति के लिए संघर्ष करना इस संस्था के प्रमुख उद्देश्य थे। कार्यकर्ताओं पर गोखले का अत्यन्त प्रभाव था, जिसे देखकर किसी ने टिप्पणी की थी-"केवल एक गोखले से ही हमारी रूह काँपती है। उसके जैसे बीसियों और बन रहे हैं, अब हम क्या करेंगे ?"

गोखले के जीवन पर महादेव गोविन्द रानाडे का प्रबल प्रभाव था। वे 1887 में रानाडे के शिष्य बन गए। रानाडे ने उन्हें सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 15 वर्ष तक प्रशिक्षित किया और ईमानदारी, सार्वजनिक कार्यों के प्रति समर्पण व सहनशीलता का पाठ सुनाया।

गांधी जी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत आए तो गोखले से मिले। वे गोखले के विनम्र स्वभाव तथा जन जागरण हेतु किए गए प्रयासों से अत्यंत प्रभावित हुए। गांधी जी ने गोखले को अपना 'राजनैतिक गुरु' मान लिया। गांधी जी कहते थे, "गोखले उस गंगा का प्रतिरूप हैं, जो अपने हृदय-स्थल पर सबको आमंत्रित करती रहती है और जिस पर नाव खेने पर उसे सुख की अनुभूति होती है।" गांधी जी ने गोखले से स्वराज प्राप्ति का तरीका सीखा। गोखले भी गांधी जी की सादगी और दृढ़ता से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्हें बड़े भाई सा आदर देने लगे।

सन् 1889 में गोखले इण्डियन नेशनल कांग्रेस में सम्मिलित हो गए। उन्होंने कांग्रेस के मंच से भारतीयों की विचारधारा, सपनों और उनकी महत्वाकांक्षाओं को अपनी तर्कपूर्ण वाणी

और दृढ़ संकल्प द्वारा व्यक्त किया। सन् 1905 में गोखले कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में लाला लाजपतराय के साथ इंग्लैण्ड गए। उन्होंने ब्रिटिश राजनेताओं और जनता के सामने भारत की सही तस्वीर प्रस्तुत की। अपने पैंतालीस दिन के प्रवास के दौरान उन्होंने विभिन्न शहरों में प्रभावपूर्ण पैंतालीस सभाओं को सम्बोधित किया। श्रोता मंत्र-मुग्ध होकर उन्हें सुनते। निःसंदेह गोखले भारत का पक्ष प्रभावपूर्णं ढ़ंग से प्रस्तुत करने में सर्वाधिक सक्षम नेता थे।

अलीगढ़ कॉलेज अंग्रेजों और अंग्रेजी राज्य के समर्थकों तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के विरोधियों का गढ़ माना जाता था, किन्तु वहाँ भी राष्ट्रवादी छात्रों का एक प्रभावशाली समूह था। गोखले के विचारों की अलीगढ़ के छात्रों पर इतनी गहरी छाप थी, कि जब गोखले वहाँ भाषण देने पहुँचे तो वहाँ छात्रों ने उनकी बग्घी के घोड़े हटा दिए और स्वयं बग्घी में जुत गए। वे बग्घी को खींचते हुए 'गोखले जिन्दाबाद' 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए स्ट्रेची हाल तक ले आए।

गोखले ने समाज सेवा को अपने जीवन का परम लक्ष्य बना लिया था। सन् 1898 में मुम्बई में प्लेग का प्रकोप हुआ। उन्होंने अपने स्वयंसेवकों के साथ दिन-रात प्लेग पीड़ितों की सेवा की। साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ाने के लिए उन्होंने भरसक प्रयास किए। उन्होंने सरकार से मादक पदार्थों की बिक्री खत्म करने का अनुरोध किया । वे अधिकाधिक भारतीयों को नौकरी देने, सैनिक व्यय को कम करने तथा नमक कर घटाने की माँगे निरन्तर उठाते रहे। उन्होंने निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को प्रारम्भ करने, कृषि तथा वैज्ञानिक शिक्षा को बढ़ावा देने तथा अकाल राहत कोष का सही ढंग से इस्तेमाल करने हेतु सरकार पर बराबर दबाव बनाए रखा।

दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों के प्रति गोखले की अत्यधिक सहानुभूति थी। अपने उन बन्धुओं पर होने वाला अन्याय उन्हें अपने ऊपर हुआ अन्याय लगता था। गांधी जी के निमंत्रण पर वे सन् 1912 में दक्षिण अफ्रीका गए। ऐसा पहली बार हुआ था जब कोई भारतीय राजनेता प्रवासी भारतीयों की स्थिति को परखने के लिए भारत से बाहर गया। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका की सरकार से जातीय भेद-भाव को समाप्त करने का आग्रह किया।

गोखले देश की आजादी, सामाजिक सुधार और समाज सेवा हेतु अथक परिश्रम करते रहे। निरन्तर श्रम से उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। उन्हें मधुमेह और दमा ने घेर लिया। 19 फरवरी 1915 की रात्रि दस बजकर पच्चीस मिनट पर उन्होंने अन्तिम साँस ली। उन्होंने आकाश की ओर आँखें उठाई और हाथ जोड़कर प्रभु को प्रणाम करते हुए सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

गोपाल कृष्ण गोखले अपने कार्यों और आदर्शों के कारण सदा अमर रहेंगे।

अभ्यास

1.गोखले की दृष्टि में समाज में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने के लिए सर्वोपरि आवश्यकता क्या थी ?
2.गांधी ने गोपाल कृष्ण गोखले को राजनैतिक गुरु क्यों माना ?
3.सही (√) अथवा गलत (ग्) का चिह्न लगाइए-
क.गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म माना वाला गाँव में हुआ।
ख.गोखले का अंग्रेजी भाषा पर असाधारण अधिकार था।
ग.गोखले सफल शिक्षक थे।
घ.गोपाल कृष्ण गोखले इंग्लैण्ड में भारत की सही तस्वीर प्रस्तुत नहीं कर पाए।
ङ.गोखले कृषि तथा वैज्ञानिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते थे।
4.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-
क.गोपाल कृष्ण गोखले के पिता .... एवं माता .... थीं।
ख.उन्होंने मुम्बई के .... कॉलेज से .... की परीक्षा उत्तीर्ण की।
ग.गोखले को .... कहा जाता था।
घ.गोखले ने .... को अपने जीवन का परम लक्ष्य बना लिया था।
5.केवल एक गोखले से हमारी रूह काँपती है। उसके जैसे बीसियों और बन रहे हैं अब हम क्या
करेंगे ?''
-गोखले के बारे में यह टिप्पणी क्यों की गई ?
6.'सर्वेण्ट आफ इण्डिया' सोसाइटी के क्या उद्देश्य थे ? सूची बनाइए।
7.आपकी इस पुस्तक में भारत की बहुत सी महान विभूतियों से सम्बंधित पाठ दिए गए हैं। हम इन विभूतियों के बारे में क्यों पढ़ते हैं ? अपने विचार लिखिए।

पाठ - 26

मुंशी प्रेमचन्द

मुंशी प्रेमचन्द का असली नाम धनपत राय था। उनका जन्म सन् 1880 ई0 में वाराणसी जिले के लमही गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम अजायब राय और माता का नाम आनन्दी देवी था। अजायब राय डाकखाने में क्लर्क थे और केवल 20 रु0 मासिक वेतन पाते थे। घर की आर्थिक स्थिति सामान्य थी। धनपत राय को पास के गाँव के एक मौलवी साहब के मदरसे में उर्दू-फारसी पढ़ने के लिए भेजा गया। जब प्रेमचन्द आठ वर्ष के थे तभी उनकी माता का देहान्त हो गया था। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया।

प्रेमचन्द का नाम हाई स्कूल मंे लिखाया गया। पिता का तबादला एक जगह से दूसरी जगह होता रहता था इससे प्रेमचन्द को नयी-नयी जगहें तो देखने को मिलती थीं पर जमकर पढ़ाई-लिखाई के लिए समय नहीं मिल पाता था।

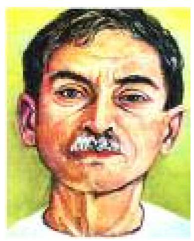

जब वह 13 वर्ष के थे तब उनके पिता का गोरखपुर तबादला हो गया। वहाँ उनका परिचय एक पुस्तक विक्रेता से हो गया। सम्पर्क बढ़ने से प्रेमचन्द नियमित रूप से उसकी दुकान पर जाने लगे। दुकान से प्रेमचन्द को पढ़ने के लिए किस्से कहानी की पुस्तकें मिल जाती थीं। वे पुस्तकें पढ़ने लगे इस प्रकार अध्ययन के प्रति उनकी रुचि बढ़ी और उन्होंने उर्दू के श्रेष्ठ उपन्यासकारों की लगभग वे सभी पुस्तकें पढ़ डाली जो उस दुकान में उपलब्ध थीं। इसी समय उन्होंने पुराणांे के उर्दू अनुवाद और ''तिलिस्म होशरुबा'' के भी कई भाग पढ़ डाले। उनका मन कथा-शिल्प में पूरी तरह डूब चुका था और इस प्रकार उनकी जिन्दगी का रास्ता भी बदल रहा था।

जब प्रेमचन्द केवल पन्द्रह वर्ष के थे और कक्षा 9 में पढ़ते थे तभी उनके पिता ने उनका विवाह कर दिया था। उनकी इच्छा थी कि वे एम0ए0 पास करके वकील बनें पर विवाह के एक वर्ष बाद ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया, फिर तो परिवार का पूरा भार प्रेमचन्द के कन्धों पर आ पड़ा। प्रेमचन्द ने इस विषम परिस्थिति में भी हार नहीं मानी और अपनी पढ़ाई जारी रखी। वे अपने गाँव से 5 मील दूर वाराणसी के क्वींस कालेज मंे पढ़ने जाते थे। वहाँ से दो ट्यूशन पढ़ाकर वे लौटते थे। उन्हंे 5 रु0 मिलते थे। इसी से घर और पढ़ाई

का खर्च चलता था। मैट्रिक परीक्षा मंे वे द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। अतः क्वींस कालेज मंे प्रवेश लेने का इरादा छोड़ दिया क्योंकि क्वींस कालेज में केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों की ही फीस माफ की जाती थी।

अर्थाभाव के कारण एक दिन प्रेमचन्द अपनी गणित की पुस्तक बेचने एक दुकान पर गए। संयोग से वहीं एक छोटे से स्कूल के हेडमास्टर से उनकी भेंट हो गयी। हेडमास्टर जी ने जब प्रेमचन्द की यह दीन दशा देखी तो उन्हें उन पर बड़ी दया आयी और उन्होंने प्रेमचन्द को 18 रु0 मासिक पर अपने स्कूल का अध्यापक बना दिया। नौकरी पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वाराणसी से लगभग 60 किलोमीटर दूर चुनार जाकर उन्होंने अपना कार्यभार सँभाल लिया। प्रेमचन्द अपना सारा समय अध्ययन में व्यतीत करते थे।

कुछ समय बाद क्वींस कालेज, वाराणसी के अंग्रेज प्रधानाचार्य बेकन साहब ने कृपा करके प्रेमचन्द को सरकारी स्कूल का अध्यापक बना दिया। अनेक विद्यालयों में अध्यापन कार्य करने के बाद वे सब डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स हो गये। इस समय तक वे उर्दू में कहानियाँ लिखना आरम्भ कर चुके थे और उनकी रचनाएँ ‘‘जमाना’’ पत्र में भी प्रकाशित होने लगी थीं। उन्होंने इन्टर और बी0ए0 की परीक्षाएँ भी पास कर ली थीं। सरकारी सेवा के नियमों का पालन प्रेमचन्द बड़ी निष्ठा से करते थे। जब वे दौरे पर जाते तो भोजन आदि की व्यवस्था स्वयं करते थे और अध्यापकों की किसी प्रकार की सेवा स्वीकार नहीं करते थे। अपने क्षेत्र के अध्यापकों के बीच वे बहुत लोकप्रिय थे।

जब देश मंे आजादी की लड़ाई शुरू हुई तो हिन्दी के कवियों और लेखकों पर भी स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रभाव पड़ा। उनकी रचनाओं में देशप्रेम की भावनाएँ व्यक्त होने लगीं। प्रेमचन्द ने भी देशप्रेम की कहानियाँ लिखीं। ये अंग्र्रेजों की अन्यायपूर्ण नीतियों के विरुद्ध भी लिखा करते थे। प्रेमचन्द की इस प्रकार की कहानियों का संग्रह ‘‘सोजे वतन’’ सन् 1909 में प्रकाशित हुआ। उनकी ये रचनाएँ नवाबराय के नाम से छपती थीं। ‘‘सोजे वतन’’ ने सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। लेखक का पता लगाने में 6 महीने लग गये। अन्त में हमीरपुर के जिला अधिकारी ने उन्हें अपने कार्यालय में बुलाया। जब प्रेमचन्द जिला अधिकारी के सामने पहुँचे तो उन्होनंे देखा कि उनकी पुस्तक ‘‘सोजे वतन’’ जिला अधिकारी के सामने रखी हुई है। पूछने पर उन्होंने स्वीकार कर लिया कि पुस्तक उनकी ही लिखी हुई है। उन्हंे केवल चेतावनी देकर छोड़ दिया गया पर ‘‘सोजे वतन’’ की सभी प्रतियाँ जब्त कर ली गयीं। इस समय तक प्रेमचन्द उर्दू के सम्मानित लेखक बन चुके थे। इस घटना के बाद वे प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे।

प्रेमचन्द सामाजिक कुरीतियों, अर्थहीन रू़ढियों, परम्पराओं और अन्ध-विश्वासों का विरोध करते थे। इन्होंने बाल-विवाह के विरोध में और विधवा-विवाह के पक्ष में भी अपनी आवाज बुलन्द की। उर्दू के अपने एक उपन्यास में जो बाद में ‘‘प्रेमा’’ नाम से हिन्दी में छपा था इन्होंने बाल विधवाओं के सूने, नीरस और दुःखद जीवन की समस्याओं को उठाया। इस

उपन्यास में नायक एक विधवा से ही विवाह कर लेता है। बाद में प्रेमचन्द ने ''सेवा सदन'' उपन्यास लिखा और दहेज की समस्या का विशद विवेचन किया। प्रेमचन्द केवल उपदेश ही नहीं देते थे बल्कि जो कुछ वे कहते थे उसे स्वयं करके दिखा देते थे। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने स्वयं एक कुलीन परिवार की विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया। उनका यह वैवाहिक जीवन बहुत सुखमय रहा।

बंगाल विभाजन और उसके विरुद्ध चलाये गए आन्दोलन, गुप्त क्रान्तिकारी संगठनों, रूस की शान्ति, जलियाँवाला बाग की घटना और 1921 ई0 में महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन का प्रेमचन्द के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्रेमचन्द ने अन्याय का विरोध करने का निश्चय किया। उस समय वे गोरखपुर में विद्यालय निरीक्षक थे।

गांधी जी के आह्वान पर प्रेमचन्द ने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। वे कानपुर के मारवाड़ी विद्यालय में अध्यापक हो गए। आर्थिक संकट में तो वे जीवन भर रहे पर नौकरी छोड़ने के बाद उनकी कठिनाइयाँ और भी बढ़ गयीं थी। लखनऊ जाकर वे ''मर्यादा'' और ''माधुरी'' पत्रिकाओं का सम्पादन करने लगे। इस बीच इन्होनंे बहुत सी कहानियाँ और उपन्यास लिखे। कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में छपी थीं जिसके कई संग्रह भी प्रकाशित हुए किन्तु लेखन कार्य से उन्हें इतना नहीं मिलता था कि उनकी गृहस्थी सुख से चल सके। उनकी रचनाएँ तो लोकप्रिय हुईं और खूब बिकी भी थीं पर सारा लाभ रचनाओं के प्रकाशक हड़प जाते थे।

प्रेमचन्द पर गांधी जी की विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा। गांधी जी के दृष्टिकोण का लौकिक पक्ष प्रेमचन्द के उपन्यासांे में इस प्रकार उभर कर आया कि सामान्य जनता के लिए वह सहज ही ग्राह्य हो गया। अंग्रेजों की नीति के कारण उनके युग मंे वर्ग संघर्ष आरम्भ हो गया। किसानों और जमींदारों के बीच संघर्ष हो रहा था। मजदूर मिल मालिकों से अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। निर्धन श्रमिक पूँजीपतियों का विरोध कर रहे थे और हरिजन जातियाँ सवर्णों के अत्याचारों से त्रस्त थीं। इन संघर्षों के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी थीं। इनके समाधान के लिए समाज सुधार की आवश्यकता थी। ऐसे समय में प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के द्वारा समाज सुधार का कार्य आरम्भ कर दिया। प्रेमचन्द मेहनत-मजदूरी करने वाले इस विशाल जन समुदाय के पक्षधर बने। उन्होंने अपनी रचनाओं मंे निर्धन की चीत्कार को मुखर बनाया, उनके जीवन के चरित्र अंकित किए, उनकी समस्याओं पर विचार किया और कठिनाइयों का हल सुझाया। उनकी रचनाओं से हमारे समाज सुधारक प्रेरणा प्राप्त करते रहे।

इनके द्वारा रचित उपन्यास में किसानों का अपने अधिकारों के लिए लड़ने को तैयार हो जाना राष्ट्रीय जागृति का सन्देश था। ''रंगभूमि'' में प्रेमचन्द ने जीवन के सभी पक्षों का विशद विवेचन किया है। उसका सूरदास तो रंगभूमि का ऐसा खिलाड़ी है जिसने कभी हार नहीं मानी और जब हारा तो हँसता ही रहा। न्याय-प्रेम और सत्य-भक्ति के कारण उसकी

हार भी जीत बन जाती है। इनके उपन्यास ‘‘कर्मभूमि’’ में दलित किसानों और मजदूरों की मूक वाणी का स्वर है। इसमें देश की जागृति और सजीवता के चित्र देखने को मिलते हैं। प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास ‘‘गोदान’’ तो देश की तत्कालीन परिस्थितियों का स्पष्ट दर्पण ही है। भारतीय नारी के आदर्शों का चित्रण कर प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है। उनके सेवा सदन, गबन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, गोदान जैसे उपन्यास एक के बाद एक प्रकाशित हुए। उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ भी लिखीं जिनका संग्रह ‘‘मानसरोवर’’ नाम से आठ भागों में प्रकाशित हुआ। प्रगतिशील आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए उन्होंने ‘‘हंस’’ और ‘‘जागरण’’ पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। इन पत्रिकाओं में नये प्रगतिशील कवियों की रचनाएँ छाप कर प्रेमचन्द उन्हें प्रोत्साहन देते रहे। आर्थिक कठिनाइयों के कारण ये पत्रिकाएँ अधिक समय तक नहीं चल सकीं।

जीवन के अन्तिम दिनों में वे भाषा की समस्या को सुलझाने में लग गए। उनका कहना था, हिन्दी और उर्दू को एक दूसरे से अलग करके दो कोठरियों में इस तरह नहीं बन्द किया जा सकता है कि उनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध ही न रहे। ऐसा करने से दोनों भाषाओं का विकास रुक जाएगा। अपने इन विचारों को स्थापित करने के लिए प्रेमचन्द ने बड़ी भाग-दौड़ की पर हिन्दुस्तानी भाषा का उनका स्वप्न साकार नहीं हो सका। उनका स्वास्थ्य पहले से ही खराब चल रहा था। पुनः इस भाग-दौड़ ने उनको थका डाला और वे बीमार पड़ गए। उनके पेट में जख्म हो गए थे जिसका बहुत इलाज किया गया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। 8 अक्टूबर 1936 ई0 को प्रातःकाल वे सदा के लिए सो गए।

अभ्यास

1.प्रेमचन्द अपनी शिक्षा क्रम से जारी क्यों नहीं रख सके ?

2.प्रारम्भिक जीवन में प्रेमचन्द ने आर्थिक कठिनाइयों का सामना किस प्रकार किया ?

3.प्रेमचन्द ने किस उद्देश्य से अपने उपन्यासों और कहानियों की रचना की ?

4.ऐसी दो राजनीतिक घटनाओं को लिखिए जिनका उनके हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे अन्याय का विरोध करने के लिए तत्पर हो गए।

5.प्रेमचन्द के चरित्र की किन्हीं चार विशेषताओं का उल्लेख करिए।

पाठ - 27

सुब्रह्मण्यम् भारती

एट्टपुरम् के दरबार में साहित्य चर्चा चल रही थी। सात वर्षीय एक बालक अपने पिता के पास बैठा बड़े ध्यान से लोगों की बातें सुन रहा था। चर्चा समाप्त हुई। बालक अपने स्थान से उठा। राजा की आज्ञा पाकर बालक ने स्वरचित कविता का पाठ किया। कविता सुनकर राजा अचम्भे में पड़ गए, दरबारियों को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। आश्चर्य का कारण था बालक की छोटी उम्र और कविता में व्यक्त भावों की गूढ़ता। गुणग्राही राजा को बालक में कवि के गुण परिलक्षित हुए। राजा ने बालक को महाकवि होने का आशीर्वाद दिया। सात वर्ष की अवस्था में प्राप्त आशीर्वाद को जीवन में चरितार्थ करने वाला यही बालक आगे चल कर तमिलनाडु का महान कवि बना। उसका नाम था सुब्रह्मण्यम्।

सुब्रह्मण्यम् का जन्म तमिलनाडु प्रदेश में सन् 1882 में हुआ था। गाँव का नाम था शिवयेरी। पिता चिन्नस्वामी तमिलभाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। गणित में भी उनकी गहरी पैठ थी। चिन्नस्वामी का एट्टपुरम के दरबार में बड़ा सम्मान था। पिता के साथ सुब्रह्मण्यम भी यदा-कदा दरबार जाया करते थे।

सुब्रह्मण्यम बचपन से ही कविता लिखने लगे थे। उनकी काव्य प्रतिभा से प्रभावित हो विद्वानों ने ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही सुब्रह्मण्यम को 'भारती' की पदवी से विभूषित किया। विद्वतमण्डली का यह सम्मान सुब्रह्मण्यम् के अतिरिक्त अभी तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही प्राप्त हुआ है।

बचपन में ही 'भारती' माँ के स्नेह से वंचित हो गए। जब वे पाँच वर्ष के थे तभी उनके सिर से माँ का साया हट गया। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। दूसरी माँ ने 'भारती' को पूरा प्यार दिया। बहन भागीरथी को भी नई माँ से कभी कोई शिकायत नहीं रही।

विवाह के दो वर्ष बाद अचानक पिता का स्वर्गवास हो गया। चौदह वर्षीय बालक के सुकुमार कन्धों पर परिवार का भारी बोझ आ पड़ा। पिता के न रहने पर राजपरिवार से भी सम्बन्ध टूट गया। आय के समस्त स्रोत समाप्त हो गए। 'भारती' को परिवार चलाना दुरूह

हो गया। उन्होंने जीवन में पहली बार निर्धनता की मार्मिक पीड़ा की अनुभूति की। ‘धन की महिमा’ कविता में उनकी यह पीड़ा व्यक्त हुई है।

पिता की मृत्यु के एक वर्ष बाद ‘भारती’ वाराणसी चले गए। वहाँ अपने फूफा के पास रहकर उन्होंने हिन्दी, संस्कृत का अध्ययन किया। हिन्दी, संस्कृत लेकर भारती ने प्रथमा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्होंने अंग्रेजी की शिक्षा पिता के समय में ही तिरुवेलवेली के अंग्रेजी स्कूल में प्राप्त की थी।

’भारती’ का भाषाओं के प्रति बड़ा उदार दृष्टिकोण था । वे अपनी मातृभाषा को बहुत प्यार करते थे। साथ ही हिन्दी तथा देश की अन्य भाषाओं के प्रति भी उनमें अगाध प्रेम था। तमिलभाषी होते हुये भी उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो भारतीय संस्कृति की उत्कृष्ट धरोहर को सँभालने में समर्थ है। वही भाषा देश की एकता को अक्षुण्ण रखने में सक्षम है। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया।

वाराणसी में रहकर ’भारती’ ने काशी क्षेत्र का तथा वहाँ की संस्कृति का गहन अध्ययन किया। विद्वता की गरिमा से मण्डित वाराणसी का वातावरण उन्हें बहुत भाया। गंगा के घाटों के रमणीक दृश्य ने उनके मन को मोह लिया।

एक वर्ष तक वाराणसी मंे रहने के बाद ’भारती’ अपने गाँव लौट गए। घर पर ही उन्होंने साहित्य-साधना प्रारम्भ की। ’भारती’ की साहित्य-साधना की सुगन्ध एट्टपुरम् के दरबार तक पहुँची। राजा ने ’भारती’ को दरबार में बुला लिया। दरबार में रहते हुये उन्होंने तमिल साहित्य का अध्ययन किया। वहीं अंग्रेजी साहित्य को भी पढ़ने का उन्हें अवसर मिला। वे शैली की स्वच्छन्दतावादी कविताओं से बहुत प्रभावित थे। ’भारती’ ने शैली के नाम पर अपना उपनाम भी ’शैल्लिदासन’ रख लिया था। इसी नाम से उन्होंने अंग्रेजी कविताओं का तमिल में अनुवाद प्रकाशित किया।

‘भारती’ प्राचीन साहित्य के बड़े पारखी थे। उनको विभिन्न भाषाओं के प्राचीन साहित्य को संकलित करने का शौक था।

एक बार एट्टरम के राजा के साथ वे चेन्नई (पूर्व नाम मद्रास) गए। जाते समय पत्नी ने उनसे वहाँ से अच्छी साड़ियाँ लाने का अनुरोध किया। ‘भारती’ ने साड़ी के पैसों से तमिल साहित्य खरीद लिया। साहित्य को दो गाड़ियों में भरकर घर लौटे। लदी हुई गाड़ियों को दरवाजे पर खड़ी देख चेल्लम्मा बहुत प्रसन्न हुई। परन्तु जब उसे वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ तो वह ठगी सी रह गयी। ‘भारती’ पत्नी की वेदना को भाँप गए। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा-‘”मुझे खेद है कि मैं तुम्हारे लिए साड़ियाँ नहीं ला सका। वस्तुतः ये साहित्यिक कृतियाँ साड़ी से कहीं अधिक वास्तविक और स्थायी सम्पत्ति हैं।“

‘भारती’ में मानवतावादी दृष्टिकोण बहुत प्रबल था। वे सच्चे अर्थों में मानव थे। मानव को वे ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते थे। वे कहते थे ईश्वर की इस सुन्दर कृति को जाति और

सम्प्रदाय के दोष से कलंकित न किया जाय। छोटी-छोटी बातों पर लोगों को आपस में झगड़ते देख उनका मन दुःखी हो उठता था। वे उन्हें समझाते थे एवं उनको बताते थे कि जाति एवं सम्प्रदाय मनुष्य द्वारा बनाये गए बन्धन हैं। उनको ईश्वरीय समझना मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है। उनका विश्वास था कि समाज की उन्नति के लिए आपसी मेल-जोल आवश्यक है।

'भारती' की रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। देश के स्वतंत्रता संग्राम के लिए उन्होंने जिस शस्त्र का प्रयोग किया, वह था उनका लेखन, विशेषतया कविता लेखन। उनकी कविताओं द्वारा तमिलनाडु में राष्ट्रीयता की असीम लहर छा गई। उनकी कविताओं ने तमिलवासियों को जाग्रत कर स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

वे लोगों को अंग्रेजों के बहकावे में न आने की चेतावनी बार-बार देते रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष पूर्व ही 'भारती' ने अंग्रेजों को जता दिया था कि भारत में उनके शासन की समाप्ति सन्निकट है क्योंकि भारतीय उनकी भेद-भाव वाली नीति से परिचित हो चुके हैं। अब वे संगठित हैं-

माँ के एक गर्भ से जन्मे रे विदेशियों, भेद न हमारे।
मनमुटाव से क्या होता है, हम भाई-भाई ही रहेंगे।
साथ रहेंगे तीस कोटि हम, साथ जियेंगे, साथ मरेंगे।।

'भारती' शान्ति एवं अहिंसा के पुजारी थे। अहिंसा द्वारा स्वराज प्राप्त करना उनका अभीष्ट था।

उनकी देश-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ 'इण्डिया' नामक तमिल पत्रिका में प्रकाशित होती थीं।

'भारती' स्वभाव से दानी थे। दूसरों की सहायता करने में उन्हें आनन्द आता था। उनकी दानशीलता की अनेक कथाएँ आज भी तमिलनाडु में प्रचलित हैं। 'भारती' को बच्चे बहुत प्यारे थे। बालमंडली में वे घंटों बैठे उनसे बातें करते रहते थे। बच्चों के मनोरंजन में वे सहयोगी बनते। कभी-कभी स्वयं बच्चों जैसा आचरण भी करने लगते।

'भारती' तिरुनेलवेली मंदिर के पालतू हाथी को नित्य गन्ना और नारियल खिलाने जाया करते थे। संयोगवश एक दिन वह हाथी पागल हो गया। लोगों के लाख मना करने पर भी 'भारती' नित्य की भँाति पागल हाथी को नारियल खिलाने पहुँचे। पास जाते ही हाथी ने उन्हें इतनी जोर से धक्का मारा कि वे छिटककर दूर जा गिरे, गिरते ही वे बेहोश हो गए। मूचर्िछत अवस्था में उन्हें चिकित्सालय में भर्ती कराया गया। अस्पताल से आने के बाद भी वे अस्वस्थ रहे। 12 दिसम्बर सन् 1922 को भारतमाता का यह अनन्य भक्त चिरनिद्रा में सो गया।

तमिलनाडु के कवियों में सुब्रह्मण्यम् भारती मूर्धन्य हैं। 'भारती' की रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। 'भारती' ने देश की एकता एवं अखण्डता की रक्षा की बात उस समय कही थी जब देशवासी परतंत्रता की जंजीरों में जकड़े थे। 'भारती' ऐसी स्वतंत्रता के

पोषक थे जिसकी नींव एकता और समानता पर टिकी हो। बाल साहित्य सृजन में भी उनका योगदान प्रशंसनीय रहा है। 'भारती' की समस्त कृतियों को तमिलनाडु सरकार ने 'भारती ग्रंथावली' के अन्तर्गत तीन खण्डों में प्रकाशित किया है।
मानवता के प्रबल समर्थक, राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के अनन्य उपासक 'भारती' धन्य हैं।

अभ्यास

1.सुब्रह्मण्यम् भारती ने देश के विकास के लिए किन बातों को आवश्यक माना है ?

2.सुब्रह्मण्यम् भारती किस प्रकार राष्ट्रीय एकता स्थापित करना चाहते थे ?

3.नीचे लिखे वाक्यों के सम्मुख अंकित शब्दों में से सही शब्द छाँटकर वाक्य पूरा कीजिए-

क.सुब्रह्मण्यम् को 'भारती' की उपाधि से .... में विभूषित किया गया। (वृद्धावस्था, बचपन, युवावस्था, मरणोपरान्त)

ख.'भारती' ने हिन्दी, संस्कृत की शिक्षा .... प्राप्त की थी। (मद्रास (चेन्नई) में, तिरुनेलवेली में, वाराणसी में)

ग.'भारती' की बहन का नाम .... था। (भागीरथी, सावित्री,चेल्लम्मा)

4.'भारती' को किस बात का विशेष शौक था ?

5.'भारती' के जीवन की किन्हीं 5 विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

पाठ - 28

विनायक दामोदर सावरकर

भारत की स्वतन्त्रता के आन्दोलन मंे ऐसे अनेक महापुरुषांे का योगदान रहा है जिन्होंने मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। ऐसे ही एक महान पुरुष विनायक दामोदर सावरकर भी थे जो भारत की स्वतन्त्रता के लिए जन्मे, जीवित रहे और जीवन के अन्तिम क्षणों तक देश की अखण्डता और स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते रहे।

सावरकर का जन्म महाराष्ट्र के भागुर गाँव में 28 मई, 1883 में हुआ था। देश भक्ति इन्हें विरासत में मिली थी। इनके बाबा विनायक दीक्षित तथा पिता दामोदर,दोनों ही महान देश-भक्त थे।

छात्र जीवन से ही वे देश की स्वतन्त्रता के लिए कार्य किया करते थे। तत्कालीन स्वतन्त्रता आन्दोलन के विशिष्ट कार्यकर्ताओं से उनका परिचय था। लोकमान्य तिलक से वे अत्यधिक प्रभावित थे। तिलक का ही आशीर्वाद पाकर सावरकर ने सन् 1905 में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया तथा अपने साथियों के साथ मिलकर पूना शहर में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई।

विदेशी वस्त्रों की सार्वजनिक रूप से होली जलाये जाने की इस साहसपूर्ण घटना की न केवल पूना, अपितु पूरे देश मंे जोरदार चर्चा हुई। समाचार पत्रों मंे इस घटना से सम्बन्धित समाचार प्रकाशित हुआ। इससे अंग्रेज अत्यन्त चिन्तित हो उठे। फलतः कालेज के अधिकारियों पर सावरकर को कालेज से निष्कासित करने के लिए दबाव डाला गया। सावरकर की बी0ए0 की परीक्षा निकट थी, फिर भी उन्हें कालेज से निकाल दिया गया और भारी जुर्माना भी किया गया। किसी प्रकार मुम्बई विश्वविद्यालय ने उन्हें परीक्षा देने की अनुमति दे दी। सावरकर बी0ए0 की परीक्षा मंे अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए। कालेज में पढ़ते हुए सावरकर ने ‘‘मित्र मेला’’ नामक संस्था की स्थापना की थी, जिसका एकमात्र उद्देश्य भारत के नवयुवकों में स्वाधीनता के प्रति चेतना उत्पन्न करना तथा उनके मन में अंग्रेजी शासन के प्रति विरोध प्रकट करने की शक्ति उत्पन्न करना था।

बाल्यावस्था से ही सावरकर अपने माता-पिता से शिवाजी और महाराणा प्रताप की वीरता और देश प्रेम की कहानियाँ सुना करते थे। छात्र जीवन से ही वे इटली के महान क्रान्तिकारी मेजिनी और गैरीवाल्डी बनने का स्वप्न देखने लगे। सावरकर ने ‘‘अभिनव भारत’’ नामक संस्था की स्थापना की जिसका एकमात्र उद्देश्य विद्रोह के द्वारा अंग्रेजी शासन को समूल नष्ट कर भारत भूमि को स्वतन्त्र कराना था। सन् 1905 के बंग भंग और वायसराय लार्ड कर्जन की ‘‘फूट डालो और शासन करो’’ की नीति से भारतवासी क्षुब्ध हो उठे। अंग्रेजों को

देश से बाहर निकालने के लिए लोग सावरकर जैसे नेताओं की छत्रछाया में आने लगे। फलस्वरूप अंग्रेजी शासन की कोप दृष्टि सावरकर पर पड़ी। इसी बीच लोकमान्य तिलक की सलाह पर वे कानून का अध्ययन करने के लिए इंग्लैण्ड चले गए।

भारतभूमि से इतनी दूर पहुँचकर भी सावरकर के मन मंे मातृभूमि की स्वतन्त्रता की चिन्ता कम नहीं हुई। लन्दन में वह इण्डिया हाउस में रहने लगे। यह स्थान भारतीय क्रान्तिकारियों का मुख्य केन्द्र था। सावरकर श्री श्यामकृष्ण वर्मा के सहयोगी बन गए। कालान्तर में इण्डिया हाउस के समस्त कार्यों का भार उन्हीं पर आ गया। यही वह स्थान है, जहाँ बैठकर सावरकर ने तीन पुस्तकें - ‘‘मैजिनी’’, ‘‘सिखों का इतिहास’’ और ‘‘1857 का स्वातन्×य समर’’ की रचना की। सरकार द्वारा इस पुस्तक के भारत प्रवेश पर यद्यपि प्रतिबन्ध लगा दिया गया था लेकिन फिर भी इसकी बहुत प्रतियाँ किसी प्रकार भारत पहुँच गयीं। इस पुस्तक तथा अपने कार्यों के कारण सावरकर लोकप्रिय हो गए जिससे अंग्रेजी सरकार उनसे बहुत नाराज हो गयी। परिणाम यह हुआ कि बैरिस्ट्री की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् भी सावरकर को प्रमाण-पत्र नहीं दिया गया।

सन् 1905 से 1910 के बीच मध्य भारत में सरकार के विरुद्ध जो विद्रोह हुआ था उसके लिए सावरकर को प्रमुख रूप से उत्तरदायी ठहराया गया। फलस्वरूप उन्हें इंग्लैण्ड में मुम्बई उच्च न्यायालय के वारन्ट पर गिरफ्तार कर भारत लाया गया। पानी के जहाज से आते समय सावरकर ने फ्रान्स के मार्सलीज बन्दरगाह के पास शौचालय के रोशनदान से समुद्र के अथाह जल में कूदकर भागने का साहसिक प्रयास किया। इस घटना के बाद से वे वीर सावरकर कहलाये। वे फ्रान्स की धरती पर पहुँच भी गए लेकिन पुनः बन्दी बना लिये गए। मुम्बई के उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें 55 वर्ष के काले पानी की कठोर सजा दी गयी। सावरकर ने अण्डमान के यातना कारागार में 11 वर्षों तक कठोर सजा भोगी। इन्हें कारावास की अवधि में कोल्हू में बैल की जगह जोता जाता था और चक्की पीसनी पड़ती थी परन्तु बाद में छोड़ दिये गए।

सन् 1927 में दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान से दुःखी होकर सावरकर शुद्धि आन्दोलन और समाज के संगठन के कार्यों में लग गए। वे भारत भूमि पर निवास करने वाले सभी नागरिकों को एक मानते थे तथा अलगाववादी भावना के प्रबल विरोधी थे।

सन् 1937 ई0 मंे सावरकर पूर्णरूप से मुक्त किए गए तो जनता तथा समस्त देशप्रेमियों ने मुम्बई में उनका हृदय से स्वागत किया। उन्होंने बड़ी निर्भीकता के साथ समाज में व्याप्त जाति-पाँति, छुआ-छूत और ऊँच-नीच की भावनाओं का विरोध किया। वे 1937 से 1947 तक हिन्दू महासभा के अध्यक्ष रहे। सन् 1944 में भारत की अखण्डता को सुरक्षित रखने के लिए दिल्ली में एक सम्मेलन हुआ। उस समय अंग्रेज सरकार साम्प्रदायिक आधार पर भारत का विभाजन करना चाहती थी। वीर सावरकर ने इसका कठोर शब्दों में विरोध किया तथा तत्कालीन वायसराय को पत्र लिखा।

वीर सावरकर देश प्रेम, त्याग, साहस और शौर्य के साक्षात प्रतीक थे। दिनांक 26 जनवरी 1966 को इस महान् देशभक्त का 83 वर्ष की अवस्था में निधन हो गया और इसी के साथ भारत माता ने अपना एक कर्तव्यनिष्ठ और सच्चा सपूत खो दिया।

अभ्यास

1.सावरकर का जन्म कब और कहाँ हुआ ?

2.उन्हें कालेज से क्यों निकाला गया ?

3.सावरकर द्वारा स्थापित मित्र मेला नामक संस्था के क्या उद्देश्य थे ?

4.पानी के जहाज से वे कैसे भागे ?

पाठ - 29

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद

"रात्रि आधी से अधिक बीत चुकी थी। एक युवक बिस्तर में परेशान-सा करवटें बदल रहा था। दूर-दूर तक आँखों में नींद न थी। उसे कानों में राष्ट्रीय नेता गोखले के शब्द बार-बार गूँज उठते "याद रखो, युवकों, देश का भी तुम पर अधिकार है ....तुम जैसे लोगों पर उसका अधिकार और भी अधिक है।"

मातृभूमि विदेशी शासन में जकड़ी हुई थी और उसे उनकी जरूरत थी। वह भारत-माता की पुकार कैसे अनसुनी कर सकते थे? परन्तु उनकी माता जी और बड़े भाई साहब को यह पसन्द नहीं था। राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी बात पत्र के माध्यम से बड़े भाई साहब तक पहुँचायी-"मैं आपके सामने ये बातें न कर सका। आप को कठिनाई में डालना मुझे शोभा नहीं देता। आपने मुझसे बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखीं हैं। वे सब एक क्षण में नष्ट हो जायेंगी। मेरी यदि कुछ महत्त्वाकांक्षा है तो वह यही है कि मैं भारत-माता की कुछ सेवा कर सकूँ।"

राजेन्द्र प्रसाद को बचपन की जो सबसे पहली घटना याद है वह अपने हिन्दू और मुसलमान दोस्तों के साथ कबड्डी और दूसरे खेल खेलने की है। उन्हें गाँव के मठ में रामायण सुनना और स्थानीय रामलीला देखना बड़ा अच्छा लगता था। उनमें चरित्र की दृढ़ता और उदार दृष्टिकोण की आधारशिला बचपन में ही रखी गईं थी। वे बचपन से ही बड़े सौम्य और होनहार थे। उनके स्कूल के दिन परिश्रम और मौजमस्ती के मिश्रण थे।

उन दिनों यह परम्परा थी कि शिक्षा का आरम्भ फारसी की शिक्षा से किया जाए। राजेन्द्र प्रसाद पाँच या छः वर्ष के रहे होंगे, जब उन्हें और उनके दो चचेरे भाइयों को एक मौलवी साहब पढ़ाने के लिए आते थे। लड़कों ने अपने अच्छे स्वभाव वाले मौलवी साहब के साथ शैतानियाँ भी की मगर मेहनत भी बहुत की। वे सुबह बड़ी जल्दी उठकर अध्ययन कक्ष में पढ़ने के लिए बैठ जाते। यह सिलसिला काफी देर तक चलता। वास्तव में यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि इतने छोटे बच्चे बहुत देर तक ध्यान लगाकर पढ़ाई कर सकेगें। यह

विशेष गुण जीवन पर्यन्त उनमें रहा और इसी गुण ने राजेन्द्र प्रसाद को विशिष्टता भी दिलायी। उन्होंने अपने शैक्षिक जीवन की सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1915 ई0 में कानून परीक्षा में वे पाँच प्रान्तों में प्रथम आए। मेधावी छात्र होने के कारण उन्हें अनेक छात्रवृत्तियाँ प्राप्त हुई।

उनके बारे में कहा जाता है कि जिस कक्षा की उन्हें परीक्षा देनी होती थी, वह उसके आगे की कक्षा की भी पुस्तकें पढ़ा करते थे।

विद्यार्थी जीवन से ही डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद अनेक सार्वजनिक कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे। उन्होंने कोलकाता के ‘प्रेसीडेन्सी कालेज’ की सभाओं में लगन एवं उत्साह से भाग लिया। वे जिस काम को हाथ में लेते, उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। सन् 1906 में उन्होंने बिहारी युवा छात्रों को संगठित कर उनका नेतृत्व किया।

शिक्षा-दीक्षा के बाद........................

- मुज़फ्फर नगर के एक कालेज में अध्यापन कार्य
- कोलकाता विश्वविद्यालय के लॉ-कालेज में प्रोफेसर
- पटना हाईकोर्ट में वकालत

पटना हाईकोर्ट में वकालत में उन्हें खूब सफलता मिली। उनकी जितनी आमदनी होती थी, उसमें गरीब विद्यार्थियों का हिस्सा अवश्य होता था। वह अपनी आमदनी का अधिकांश भाग प्रायः गरीब विद्यार्थियों की सहायता में खर्च करते थे। संयोग से इन्हीं दिनों बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद स्वतंत्रता प्रेमी थे। अतः देश की सेवा के लिए उन्होंने वकालत की आमदनी से मुँह मोड़ लिया और वह स्वदेशी आन्दोलन में शामिल हो गए।

उन्हें अपनी नेतृत्व क्षमता को प्रदर्शित करने का वास्तविक अवसर सन् 1917 ई0 में ‘चम्पारन सत्याग्रह’ में मिला। यह भारत का प्रथम किसान आन्दोलन था। यहीं से उनके राजनैतिक और राष्ट्रीय जीवन का शुभारम्भ हुआ। अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध नील की खेती करने वालों ने आन्दोलन किया। जिसका नेतृत्व गांधी जी ने किया। यह आन्दोलन इतना प्रचण्ड और प्रखर था कि अंग्रेजों को इसके आगे घुटने टेकने पड़े। इस आन्दोलन ने डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद और बिहार को सारे देश में ख्याति दिलायी। इस सत्याग्रह के अवसर पर ही गांधी जी से डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की भेंट हुई थीं।

‘‘बापू बहुत ही दूरदर्शी हैं, इसलिए मैंने अपने दृष्टिकोण को उनके सामने रखना नियम बना लिया है। यदि उन्होंने उसको मान लिया तो ठीक है, वरना मैं उनकी सलाह को स्वीकार कर लेता हूँ।’’

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की ‘आत्मकथा से’

गांधी जी से भेंट के बाद डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद उनके अनुयायी बन गए। वे सत्य और अहिंसा के मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। परिस्थितियाँ कैसी भी हो उन्होंने अपनी सज्जनता और

सरलता को कभी नहीं छोड़ा। उनके इन्हीं गुणों के कारण गांधी जी भी उन्हें हृदय से प्यार करते थे।

सन् 1934 ई0 में बिहार भूकम्प के समय डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी बेजोड़ संगठन-शक्ति का परिचय दिया। भूकम्प की विभीषिका से बिहार की जनता तिलमिला रही थी। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद से यह पीड़ा देखी नहीं गयी। वह बीमार थे लेकिन अपनी बीमारी की चिन्ता न कर वह सहायता कार्य में लग गए। वह उन लोगों के लिए जिनके घर नष्ट हो गए थे, भोजन, कपड़ा और दवाइयाँ इकट्ठी करते।

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की सरलता, सादगी और समाज सेवा की घटनाएँ अनेक हैं। अपने को विशिष्ट या अन्य लोगों से अलग समझने की भावना उनमें कभी नहीं रही। एक अवसर पर डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद पटना से दरभंगा जा रहे थे, उस समय अत्यन्त भयानक गर्मी थी। रास्ते में सोनपुर स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो लोग प्यास से बुरी तरह त्राहि-त्राहि कर रहे थे। कुछ ही दिन पूर्व आये भूकम्प के कारण स्टेशन के नल की व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी। एक छोटी सी प्याऊ थी, जहाँ पर बैठा अकेला व्यक्ति सब की आवश्यकता पूरी नहीं कर पा रहा था। उन्होंने तत्काल अपना लोटा उठाया और पानी भर-भर के लोगों को पिलाने लगे। लोग उन्हें आवाज़ देते 'ए पानी - इधर पानी लाना!'' और यह सुनकर डॉ0 प्रसाद उधर ही दौड़ पड़ते। कहीं कोई संकोच या झिझक नहीं। अपनी समाज सेवा से डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को देशव्यापी ख्याति मिली। वह महात्मा गांधी तथा पण्डित जवाहर लाल नेहरू की तरह देश के अग्रणी नेता बन गए। सन् 1934 ई0 में उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया।

उनके रोम-रोम में सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, निर्भीकता, देशभक्ति एवं सहिष्णुता व्याप्त थी। उनकी देशभक्ति, अमूल्य त्याग और सच्चाई के लिए भारत की जनता ने उन्हें 'देशरत्न' की उपाद्दि दी। सन् 1950 ई0 में संविधान सभा ने उन्हें स्वतंत्र भारत का राष्ट्रपति चुना। बाद में 1952 ई0 में आम चुनावों के बाद वे भारत के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। वे सन् 1962 ई0 तक लगातार दो बार भारत के प्रथम राष्ट्रपति रहे। राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए वे दस हजार रुपये के वेतन के स्थान पर केवल दो हजार आठ सौ रुपये वेतन लेते थे। बारह वर्षों के लिए राष्ट्रपति भवन उनका घर था।

राष्ट्रपति भवन में पहुँचकर भी डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद की सरलता, सादगी, और भारतीय संस्कृति के प्रति गहन आस्था में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आई। अपने व्यक्तिगत मित्रों और परिचितों का स्वागत वे अपने पारम्परिक तरीके से ही करते थे। उन्होंने एक बार संसद सदस्य श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी और उनके पति श्री गजानन को अपने यहाँ भोजन के लिए आमंत्रित किया।

इसका वर्णन करते हुए श्रीमती कुलकर्णी ने लिखा है-''मैं सोचती थी हम लोग पाश्चात्य ढंग से औपचारिक भोज पर जा रहे है मगर भोजन के लिए राजेन्द्र बाबू हमें एक छोटे से भोजन के कमरे में ले गए। वहाँ गोल मेज पर हम तीनों के लिए थालियाँ लगी थीं और राजवंशी

देवी (डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद जी की पत्नी) हमारा भोजन गरम कर रहीं थी और परोस रही थीं। मैं और गजानन जी राजेन्द्र बाबू की सरलता पर चकित थे।''

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को सामान्यतः कभी क्रोध नहीं आता था और न ही कभी आवेश में आकर किसी को भला बुरा कहते थे। यदि कभी ऐसा हो जाता तो बाद में क्रोध शान्त होने पर बड़े दुखी होते और उसका पश्चाताप करते।

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद का एक पुराना नौकर था तुलसी। जब वे राष्ट्रपति भवन में रहते थे तब एक दिन उनके कमरे की सफाई करते हुए तुलसी से हाथी दाँत का पेन डेस्क (मेज) से गिर कर टूट गया। स्याही कालीन पर फैल गई। राजेन्द्र प्रसाद बहुत गुस्सा हुए। यह पेन किसी की भेंट थी। उन्हें बहुत प्रिय भी थी। उन्होंने तुरन्त तुलसी को अपनी निजी सेवा से हटा दिया। उस दिन व्यस्तता के बावजूद उनके दिल में एक काँटा सा चुभता रहा। उन्हें लगा उन्होंने तुलसी के साथ अन्याय किया है। उन्होंने शाम को तुलसी को अपने कमरे में बुलाया। तुलसी डरता हुआ भीतर आया। उसने देखा कि राष्ट्रपति सिर झुकाए और हाथ जोड़े उसके सामने खड़े हैं। उन्होंने धीमे स्वर में कहा ''तुलसी मुझे क्षमा कर दो।'' तुलसी इतना चकित हुआ कि उससे कुछ बोला नहीं गया। राष्ट्रपति ने फिर नम्र स्वर में दोहराया ''तुलसी, तुम क्षमा नहीं करोगे क्या ?'' इस बार सेवक और स्वामी दोनों की आँखों में आँसू आ गए।

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। एक बार अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में एक प्रस्ताव पेश किया जाना था, जो कहीं खो गया। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को पता चला तो उन्होंने पूर्ण आत्मविश्वास से कहा-''चिन्ता न करें मैं उसे फिर तैयार कर देता हूँ।'' उन्होंने स्मरण शक्ति के आधार पर जो प्रस्ताव तैयार किया वह मूल से पूर्णतः मिलता था। इसकी पुष्टि सबने की।

आज हिन्दी भाषा के अनन्य पुजारी के रूप में भी उन्हें याद किया जाता है। उन्होंने हाई स्कूल तक हिन्दी माध्यम से शिक्षा दिलाने तथा विश्वविद्यालयों में हिन्दी को सर्वोच्च स्थान दिलाने के लिए अनेक उपाय किये। हिन्दी को राजभाषा बनाने का श्रेय डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को ही जाता है। इसके साथ ही वह मानते थे कि यदि हमें आधुनिक विश्व के साथ अपनी गति बनाए रखनी है तो अंग्रेजी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्होंने स्वयं भी कई ग्रंथ लिखे।

सन् 1962 ई0 में राष्ट्र ने उन्हें 'भारत रत्न' की सर्वश्रेष्ठ उपाधि से सम्मानित किया।

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ.......

- आत्मकथा
- चम्पारन में सत्याग्रह
- इण्डिया डिवाइडेड
- महात्मा गाँधी एवं बिहार, सम रेमिनिसन्सेज
- बापू के कदमों में
- सम्पादन 'साप्ताहिक देश'
- संस्थापक 'लॉन्वीकली'

अपने जीवन के आखिरी महीने बिताने के लिए उन्होंने पटना के निकट सदाकत आश्रम चुना। यहाँ पर 28 फरवरी 1963 ई0 में उनका देहान्त हुआ।

अभ्यास

1.डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

2.डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने वकालत क्यों छोड़ी ?

3.'चम्पारन सत्याग्रह' कब और क्यों किया गया ?

4.उन घटनाओं का उल्लेख कीजिए जिससे डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की देश-भक्ति व देश-सेवा का पता चलता है।

5.निम्नलिखित में सही वाक्यों के सामने सही (√) तथा गलत के सामने गलत (ग्) का चिह्न लगाइए।

क.डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने वकालत से मुँह मोड़ लिया क्योंकि इसमें आमदनी कम थी।
( )

ख.डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद एक सफल किसान थे और अन्त में देश के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। ( )

ग.अपने विद्यार्थी जीवन से ही डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद सार्वजनिक कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे। ( )

6.निम्नलिखित घटनाओं को सही क्रम में व्यवस्थित कीजिए:-

□उन्होंने बिहारी युवा छात्रों को संगठित किया।

□वे संविधान निर्मात्री सभा के अध्यक्ष बने।

□चम्पारन सत्याग्रह।

□वे अपने हिन्दू और मुसलमान दोस्तों के साथ 'चिक्का' और 'कबड्डी' खेलते थे।

□वे भारत के प्रथम राष्ट्रपति चुने गए।

7.डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के व्यक्तित्व के किन गुणों ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया उनकी सूची बनाइए।

8.देश के किसी अन्य राष्ट्रपति के विषय में जानकारी इकट्ठी कीजिए और लिखिए।

9.'भारत रत्न' से सम्मानित भारत के सभी राष्ट्रपतियों की सूची बनाइए।

पाठ - 30

मदर टेरेसा

"कक्षा में पढ़ाते-पढ़ाते उनकी नज़र खिड़की पर ठहर जाती थी। स्कूल के पीछे एक झोपड़ पट्टी थी जो कक्षा की खिड़की से साफ दिखाई पड़ती थी। उस झोपड़ पट्टी में दुःखी, अनाथ, फटेहाल तथा बहुत ही गरीब लोग रहते थे। वह रोज खिड़की से उनकी हालत देखती थीं। उनका मन पीड़ा से भर जाता था। उन लोगों की दयनीय दशा देखकर उनके हृदय में सेवामयी माँ का भाव उत्पन्न हुआ।"

तीन भाई-बहिनों में सबसे छोटी और सब की लाडली नन्हीं एग्नेस के बारे में किसी ने सोचा भी नहीं था कि एक दिन वह 'मदर टेरेसा' के रूप में सम्पूर्ण विश्व की सेवा करेगी। मदर टेरेसा का पूरा नाम एग्नेस गोन्वस्हा बोजाक्सिउ था। जब एग्नेस मात्र नौ वर्ष की थी, उसके पिता का देहान्त हो गया। उस समय उनके परिवार के पास अपने मकान के अलावा कुछ नहीं बचा था। ऐसे कठिन समय में एग्नेस की माँ ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। उन्होंने अपने परिवार का खर्च चलाने के लिए अपना व्यापार शुरू किया। ऐग्नेस को अपनी माँ से ही कठिन समय में साहस से काम लेने की प्रेरणा मिली।

उनके मन में लोगों की सेवा करने का भाव पैदा हुआ और उन्होंने मात्र 12 वर्ष की उम्र में नन बनने का निश्चय किया। यह कोई ऊपरी भाव नहीं था। उनके इस फैसले से माँ बहुत दुःखी हुईं। माँ जानती थीं कि अगर एग्नेस नन बन गई तो उनसे दूर चली जाएगी। वे उसे दोबारा कभी नहीं देख पाएँगी। उन दिनों नन को अपने परिवार से मिलने की अनुमति नहीं थी। 18 वर्ष की उम्र में वह नन बनने का प्रशिक्षण लेने डबलिन, आयरलैण्ड चली गईं। वहाँ से उन्हें 1 दिसम्बर, 1928 ई0 को कोलकाता भेज दिया गया। 14 मई 1937 ई0 को एग्नेस ने नन बनने की अन्तिम महत्त्वपूर्ण शपथ ली। अब वे एक नन और सेन्ट मेरीज़ स्कूल, कोलकाता की प्रधानाचार्य थीं। एग्नेस अब सिस्टर टेरेसा के नाम से जानी जाती थीं।

एग्नेस के सिस्टर टेरेसा बनने के पीछे भी एक कहानी है। प्रशिक्षण के दौरान उनकी मुलाकात एक फ्रांसीसी नन से हुई, जिसका नाम था टेरेसा। उस नन का विश्वास था कि

ईश्वर को खुश करने के लिए बहुत महान या बड़ा कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। प्रसन्नता और आत्मीयता से छोटे-छोटे साधारण कार्य करके भी ईश्वर को खुश किया जा सकता है। उन्होंने इसे 'लिटिल वे'- का नाम दिया। एग्नेस भी इस बात से बहुत प्रभावित हुईं और उन्होंने अपना नाम बदल कर टेरेसा रख लिया। यही टेरेसा बाद में दीन-दुःखियों की सेवा के कारण 'मदर टेरेसा' के नाम से प्रसिद्ध हुईं। लोगों ने इनमें माँ का रूप देखा क्योंकि जिस लगन और अपनत्व की भावना से ये पीड़ितों की सेवा करती थीं वह कोई ममतामयी माँ ही कर सकती है।

सन् 1947 ई0 में देश के बँटवारे के बाद बांग्लादेश से लाखों शरणार्थी भारत आये। उनकी दीन-हीन दशा देखकर टेरेसा का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने स्कूल छोड़कर पीड़ितों की सेवा करने का निश्चय किया। काफी प्रयास के बाद सन् 1948 ई0 में पोप ने उन्हें स्कूल छोड़ने की आज्ञा दे दी। अब टेरेसा नन की परम्परागत वेशभूषा से मुक्त हो गई। उन्होंने नीली किनारी वाली साड़ी पहनना शुरू कर दिया। आगे चलकर यह पहनावा सेवाभावी नर्सों की पहचान बन गई।

कान्वेण्ट छोड़ने के बाद उन्होंने यह अनुभव किया कि केवल सांत्वना के कुछ शब्दों व मुस्कुराहट से झोपड़पट्टी के लोगों का भला नहीं होगा। अतः उन्होंने पटना जाकर नर्स की ट्रेनिंग ली। ट्रेनिंग के बाद उन्होंने कोलकाता को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। यहाँ उन्होंने यह भी अनुभव किया कि गरीब, असहाय व दुःखी लोगों की सेवा करने के लिए समर्पण के अतिरिक्त द्दन की भी आवश्यकता होती है। यदि मन में कोई अच्छा संकल्प हो, अपने काम के प्रति पूरी लगन तथा विश्वास हो तो ईश्वर भी किसी न किसी बहाने उसकी मदद करता है।

मदर टेरेसा ने जब कान्वेण्ट छोड़ा उनके पास पाँच रुपये थे। उन्होंने एक स्कूल की शुरुआत से अपना कार्य प्रारम्भ किया। यह खुले आकाश के नीचे था। मानव कल्याण की यह यात्रा उन्होंने अकेले ही प्रारम्भ की थी। धीरे-धीरे लोगों का सहयोग मिलता गया। अब बस्ती के लोग, चर्च के फादर और मदर टेरेसा के कई शिष्य उनके साथ थे। बस्ती में रहते हुए उन्होंने अनेक कार्य किए।

उल्लेखनीय-

- मदर टेरेसा और उनके सहयोगियों ने घरों व होटलों से बचा हुआ खाना इकट्ठा करके गरीबों को खाना खिलाने का प्रबन्ध किया।
- माता-पिता के नियंत्रण से बाहर या आपराधिक कार्यों में फँसे बच्चों का जीवन सँवारने के उद्देश्य से 'प्रतिमा सेन' विद्यालय की स्थापना की।
- मदर टेरेसा या उनके सहयोगियों को बस्ती या शहर में कोई असहाय व्यक्ति मिलता तो वे उसे अपने साथ ले आतीं और उनकी सेवा करतीं।

उन्होंने ‘निर्मल हृदय’ नामक घर की स्थापना की। यह घर क्या था एक जीर्ण-शीर्ण कमरा था, जिसमें दो पलंग रखे गए थे। जहाँ कहीं भी उन्हें कोई असहाय, लावारिस और बीमार व्यक्ति दिखता था या ऐसे व्यक्ति के विषय में सूचना कहीं से भी मिलती तो वे उसे ‘निर्मल हृदय’ संस्थान में ले आतीं। यहाँ स्नेह, सहानुभूति व प्यार के साथ उसकी सेवा व उपचार करतीं। उसके जीवन को बचाने का पूरा प्रयास किया जाता। इससे उस व्यक्ति को मानसिक संतोष की अनुभूति होती थी। मदर टेरेसा नहीं चाहती थीं कि कोई भी व्यक्ति सड़क पर तड़प-तड़प कर लावारिस मर जाए। यदि कोई बीमार जीवित न भी बच सके तो कम से कम शांतिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हो।

मदर टेरेसा के काम से प्रभावित होकर कोलकाता नगर निगम ने उन्हें काली घाट के पास एक पुराना मकान इस काम के लिए दे दिया। उन्होंने थोड़े समय में जो कार्य किए उनसे ‘आर्क विशप’ बहुत प्रभावित हुए। अन्ततः 7 अक्टूबर, सन् 1950 को कैथोलिक चर्च द्वारा उनकी संस्था ‘मिशनरीज ऑफ चैरेटीज’ को मान्यता मिल गई। माँ की सेवा का यह मिशन विस्तार पाकर भारत के बाहर भी सारे विश्व में फैल गया है। जहाँ भी गरीबी है, रोग है, भूख है वहाँ विशेष रूप से ‘मिशनरीज़ ऑफ चैरिटीज’ काम कर रहीं हैं।

ऐसा नहीं है कि मानव सेवा की उनकी यात्रा बहुत सरल रही हो। मदर टेरेसा को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनका कहना था कि “अगर लोगों के विरोध के कारण मेरी मृत्यु भी हो जाए तो मुझे संतोष होगा कि मानवता की सेवा करते हुए मुझे प्राण त्यागने पड़े।”

“मदर टेरेसा द्वारा संचालित कुछ संस्थाएं”

निर्मल हृदयः-

यहाँ वृद्धों, अपाहिजों, अनाथों तथा बीमारों की सेवा तथा शेष जीवन बिताने की व्यवस्था है।

शिशु सदनः-

यहाँ अनाथ, अपंग, समाज तथा माँ-बाप के द्वारा त्यागे गए अवांछित बच्चों का पालन-पोषण होता है, उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध होता है, अगर कोई बच्चा गोद लेना चाहे तो जाँच पड़ताल कर संतुष्ट होने पर बच्चा गोद देते हैं।

प्रेमघर, शान्तिनगरः-

कुष्ठ रोगियों के पुनर्वास के लिए ये बस्तियाँ बसाई गई हैं। यहाँ रोगी अपना इलाज कराते हुए शान्तिपूर्वक प्यार भरे वातावरण में रहते हैं और स्वास्थ्य लाभ करते हैं। स्वस्थ होने पर उन्हें दस्तकारी सिखाई जाती है जिससे उनमें आत्मनिर्भरता तथा आत्मसम्मान की भावना पैदा हो।

मदर टेरेसा सारे काम अपने हाथ से करती थीं। उन्हें किसी काम में कोई शर्म नहीं थी। मदर टेरेसा रोगियों का मल-मूत्र भी साफ करने के लिए किसी अन्य को नहीं कहती थीं। वे स्वयं

अपने हाथों से करती थीं। उनका जीवन सादा और सरल था तथा वे बहुत परिश्रमी थीं। कभी-कभी वह सुबह आठ बजे बाहर निकलतीं और शाम चार या पाँच बजे लौटती थीं। अक्सर इस बीच एक बूँद पानी भी नहीं पीती थीं। यहाँ तक की सत्तर वर्ष की आयु में भी वे दिन के इक्कीस घंटे काम करती थीं। वे बहुत दृढ़ और निर्भीक महिला थीं।

पवित्र हाथ

अमरीकी सीनेटर कैनेडी ने एक बार भारत स्थित शरणार्थी शिविरों का दौरा किया। एक शिविर में उन्होंने देखा कि मदर टेरेसा एक असहाय बीमार व्यक्ति की सेवा में लगी हुई हैं। रोगी, उल्टी, दस्त व खून से लथपथ पड़ा था। मदर टेरेसा पूरी तन्मयता से उसकी सेवा सफाई में लगीं थीं , कैनेडी यह दृश्य देखकर बहुत प्रभावित हुए। वे मदर टेरेसा के निकट जाकर श्रद्धापूर्वक झुककर बोले-'क्या मैं आपसे हाथ मिला सकता हूँ।''

मदर टेरेसा अपने हाथों को देखकर बोलीं-'ओह ! अभी नहीं, अभी मेरे हाथ साफ नहीं हैं।''

कैनेडी ने भाव विह्वल होकर उनके हाथ अपने हाथ में ले लिए और कहा-'नहीं, नहीं, इन्हें गंदे कहकर इनका अपमान मत कीजिए। ये बहुत पवित्र हैं। इन पवित्र हाथों को अपने सिर से लगाना मेरा सौभाग्य होगा।''

यह कहते हुए कैनेडी ने माँ टेरेसा के हाथों को अपने सिर पर रख लिया।

5 सितम्बर, सन् 1997 को लम्बी बीमारी के बाद मदर टेरेसा ने सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं। सम्पूर्ण विश्व में शोक की लहर दौड़ गई। उस दिन विश्व ने अपनी करुणामयी माँ खो दी। कोलकाता की सड़कों पर लोग फूट-फूट कर रो रहे थे। उनकी अन्तिम यात्रा में भारत ही नहीं विश्व के अनेक देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

मदर टेरेसा को उनके सेवा भाव तथा निःस्वार्थ कार्यों के लिए भारत तथा विश्व के कई देशों और संस्थाओं ने उन्हें बड़ी-बड़ी धनराशियाँ दीं और अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया । मदर टेरेसा को जो भी दान, पुरस्कार मिलता वह सबका सब सेवा कार्यों पर लगाया जाता था।

यद्यपि मदर टेरेसा भारतीय नागरिक बन चुकी थीं फिर भी वे सम्पूर्ण विश्व को अपना घर मानती थीं। एक बार विदेश यात्रा से लौट कर आने पर एक पत्रकार ने पूछा-''सुना है आप अपने देश गयीं थीं ?''

माँ ने उत्तर दिया-''अपना कौन-सा देश ? मेरा देश तो यह भारत ही है। वैसे मनुष्यता के नाते सारा विश्व ही मेरा देश है। मेरे लिए अब 'मैं, और मेरा' की कोई सीमा नहीं है। जहाँ भी दुखी, पीड़ित, अनाथ, असहाय मनुष्य दिखेगा, मैं उसकी हूँ वह मेरा है।''

यद्यपि आज मदर टेरेसा हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी उनका यह संदेश दुनिया के हर व्यक्ति के लिए प्रेरणा स्रोत है-

“आपको विश्व में जहाँ कहीं भी दुखी, रोगी, बेसहारा, अनाथ, बेघर, असहाय लोग मिलें वे आपका प्यार पाने के हकदार हैं, उन्हें आपकी मदद चाहिए। जाति और धर्म पर विचार न कर उन्हें एक मनुष्य के नाते दी गई आपकी मदद, आपका प्यार मानवता का सिर ऊँचा कर देगा तथा आपको अपूर्व मानसिक सुख तथा शांति मिलेगी। इसी में जीवन की सार्थकता है।”

पुरस्कार व सम्मान

□इंग्लैण्ड की महारानी द्वारा ‘आर्डर आफ ब्रिटिश एम्पायर’
□इंग्लैण्ड के राजकुमार फिलिप द्वारा ‘टेम्पलस’ पुरस्कार
□अमेरिका सरकार द्वारा ‘जॉन एफ कैनेडी’ पुरस्कार
□भारत सरकार द्वारा श्री जवाहर लाल नेहरू शान्ति पुरस्कार
□भारत सरकार द्वारा ‘पद्म श्री‘ व ‘भारत रत्न’ पुरस्कार (1980)
□पोप छठे द्वारा ‘पोप शान्ति पुरस्कार’
□नोबल पुरस्कार (1979)

पारिभाषिक शब्दावली

नन- कैथोलिक धर्म के अनुसार ऐसी महिलाओं को ‘नन’ कहा जाता है जो अपना घर-परिवार त्यागकर आजीवन समाज सेवा का व्रत लेती हैं।

कान्वेण्ट-ननों के प्रशिक्षण केन्द्र को कान्वेण्ट कहा जाता है। यहाँ उन्हें शिक्षा के साथ-साथ सामुदायिक सहभागिता, सेवाभाव एवं आराधना के गुणों की शिक्षा दी जाती है।

मिशनरी ऑफ चैरेटीज - यह एक संस्था है, जिसका उद्देश्य गरीबों, पीड़ितों और रोगियों की सेवा करना है।

अभ्यास

1.मदर टेरेसा ने नन बनने का निश्चय क्यों किया ?
2.किस बात से प्रभावित होकर मदर टेरेसा ने कान्वेण्ट की नौकरी छोड़ने का निश्चय किया ?
3.कान्वेण्ट छोड़ने के बाद मदर टेरेसा ने क्या अनुभव किया ?
4.अमेरिकी सीनेटर कैनेडी ने मदर टेरेसा के गंदे हाथों को भी पवित्र क्यों कहा ?
5.“सारा विश्व ही मेरा घर है।” -मदर टेरेसा ने ऐसा क्यों कहा है ?
6.दिए गऐ विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प पर सही (□) का चिह्न लगाइए-

□एग्नेस के ‘नन’ बनने के फैसले से माँ दुखी थीं, क्योंकि-
क. उन्हें पता था कि नन बनने के बाद एग्नेस उनसे बहुत दूर चली जाएगी।
ख.उन दिनों सभ्य समाज की लड़कियाँ ‘नन’ के पेशे को पसन्द नहीं करती थीं।
ग.उन दिनों नन का कार्य अत्यन्त कठिन था।

□मदर टेरेसा को कोलकाता नगर निगम ने एक पुराना मकान दे दिया क्योंकि-

क.उनके पास रहने के लिए निजी मकान नहीं था।
ख.उन्होंने नगर निगम से मकान पाने के लिए निवेदन किया था।
ग.नगर निगम उनके सेवा कार्यों से बहुत प्रभावित था।
घ.इनमें से कोई नहीं।

7.पाठ के आधार पर सही कथन पर सही (□) और गलत कथन पर गलत (ग) का चिह्न लगाइए-
क.मदर टेरेसा 18 वर्ष की उम्र में ही नन बनने का प्रशिक्षण लेने आयरलैण्ड चली गईं।
ख.'निर्मल हृदय संस्थान' का उद्देश्य लोगों के हृदय को पवित्र करना था।
ग.मदर टेरेसा का कहना था कि कोई भी व्यक्ति सड़क पर तड़प-तड़प कर लावारिस न मरे।
घ.दीन-दुखियों की सेवा के कारण टेरेसा को मदर की उपाधि मिली।

8.साथियों के साथ चर्चा कीजिए और कॉपी में लिखिए-
क.इस पाठ की किस घटना ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया और क्यों ?
ख.भविष्य में आप मानव समाज के उत्थान के लिए क्या करना चाहेंगें ? आपने इस कार्य को ही क्यों चुना ?
ग.क्या आपने कभी किसी दुखी, पीड़ित या असहाय की सेवा की है ? कैसे उल्लेख कीजिए।

9.पता कीजिए ये पुरस्कार किसके द्वारा और क्यों दिए जाते हैं-
क.जवाहर लाल नेहरू शान्ति पुरस्कार
ख.पद्म श्री
ग.भारत रत्न
घ.नोबल पुरस्कार

पाठ - 31

वीर अब्दुल हमीद

मेरे वतन में हिन्दू-मुस्लिम और सिख-ईसाई अलग-अलग कितने हैं यह तो मैं नहीं जानता पर मैं यह जरूर जानता हूँ कि मेरे देश में अस्सी करोड़ हिन्दुस्तानी बसते हैं, आज मैं उन्हीं हिन्दुस्तानियों में से एक की कहानी सुनाना चाहता हूँ। उसका नाम अब्दुल हमीद था। न वह कोई हीरो था और न मैं उसे हीरो बनाना चाहता हूँ। वह एक मामूली किसान था। उसी किसान से आपको मिलाना चाहता हूँ।

-प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ0 राही मासूम रज़ा के 'वीर अब्दुल हमीद' रचना से साभार उद्धृत

बचपन से ही अब्दुल हमीद की इच्छा वीर सिपाही बनने की थी। वह अपनी दादी से कहा करते थे कि मैं फौज में भरती होऊँगा। दादी जब कहती कि पिता की सिलाई मशीन चलाओ तब वे कहते-

"हम जाइब फौज में ! तोहरे रोकले न रुकब हम, समझलू" ?

जन्म-1 जुलाई 1933

शहीद- 10सितम्बर 1965

जन्म स्थान- धामपुर

(गाजीपुर से आजमगढ़ मार्ग पर)

दादी को उनकी जिद के आगे झुकना पड़ता और कहना पड़ता-"अच्छा-अच्छा जइहा फाउज में""। हमीद खुश हो जाते। इसी तरह वह अपने पिता मो0उस्मान से भी फौज में भरती होने की जिद करते और कपड़ा सीने के धन्धे से इनकार कर देते।

अब्दुल हमीद ने कक्षा चार के बाद पढ़ना छोड़ दिया और वह खेल-कूद, और कुश्ती में ही अपना समय बिताने लगे। उन्होंने किसी तरह सिलाई का काम सीख तो लिया पर उसमें उनका मन नहीं लगता था। उन्हें पहलवानी विरासत में मिली थी। उनके पिता और नाना दोनों ही पहलवान थे। वह सुबह जल्दी ही अखाड़े पर पहुँच जाते। दंड बैठक करते। अखाड़े

की मिट्टी बदन में मलते और कुश्ती का दाँव सीखते। शाम को लकड़ी का खेल सीखते और रात को नींद में फौज और जंग के स्वप्न देखते। वह स्वप्न देखते कि उनके हाथों में बारह बोर की दुनाली बन्दूक है। वह स्वप्न में ही दुश्मनों को भून डालते और जब घर लौटते तो धामपुर के लोग ढोल-तासे के साथ उनका स्वागत करने जाते। अपने इसी स्वप्न को पूरा करने के लिए हमीद 12 सितम्बर, 1954 को फौज में भर्ती हुए।
पहले ही परेड में हवलदार ने पूछा-

"जवान क्या तुमने परेड सीखी है ?

नहीं, जवान ने उत्तर दिया।

फिर तुम्हारे पैर ठीक क्यों पड़ते हैं ? सवाल हुआ,

'हम लकड़ी का खेल सीखते हैं', जवान ने जबाब दिया।

परेड करवाने वाले हवलदार की बाजी मात हो गई। उस्ताद परेड के मैदान से निकलकर शागिर्द बन गया और शागिर्द उस्ताद। वे अपने साथियों को भी लकड़ी का खेल सिखाते। निशाना लगाने में वे सिद्ध हस्त थे। वह उड़ती चिडि़या को भी आसानी से मार गिराते। उनके सभी साथी उनकी फुर्ती, बहादुरी और सधे हुए निशाने की प्रशंसा करते।
संयोग से अब्दुल हमीद को अपना रण-कौशल दिखाने का अवसर जल्दी ही मिल गया। 1962 ई0 में हमारे देश पर चीन का हमला हुआ। हमारे जवानों का एक जत्था चीनी फौज के घेरे में था। उनमें हमीद भी थे। लोगों को यह नहीं मालूम था कि वह साँवला सलोना जवान वीर ही नहीं, परमवीर है। यह उनकी पहली परीक्षा थी। वह मौत और शिकस्त के मुकाबले में डटे हुए थे। उनके साथी एक-एक करके कम होते जा रहे थे। उनके शरीर से खून के फौव्वारे छूट रहे थे परन्तु उनके मन में कोई कमजोरी नहीं आई। वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्हें न पिता का न माँ का, न बीबी का, न बेटे का ध्यान आया। वास्तव में वे तो एक सैनिक थे, असली हिन्दुस्तानी सैनिक। उनकी मशीनगन आग उगलती रही। धीरे-धीरे उनके गोले समाप्त हो गए। अब हमीद क्या करते ? वे मशीनगन दूसरों के हाथ में कैसे छोड़ते ? उन्होंने मशीनगन तोड़ डाली और फिर बर्फ की पहाडि़यों में रेंग कर निकल गए।
वे कंकरीली-पथरीली जमीन पर, जंगल और झाडि़यों के बीच, भूखे-प्यासे चलते रहे, और एक दिन उन्हें एक बस्ती दिखाई पड़ी। थोड़ी देर के लिए उन्हें राहत महसूस हुई किन्तु बस्ती में जाते ही वह बेहोश हो गए। इस मोर्चे की बहादुरी ने जवान अब्दुल हमीद को लाँसनायक

अब्दुल हमीद बना दिया। यह तारीख थी 12 मार्च, सन् 1962 । इसके बाद दो-तीन वर्षों में ही हमीद को नायक हवलदारी और कम्पनी क्वार्टर मास्टरी भी हासिल हुई।

जब 1965 में पाकिस्तान ने देश पर हमला किया तो अब्दुल का खून खौल उठा। पाकिस्तान यह समझता था कि भारत के मुसलमान पाकिस्तानी आक्रमणकारियों का खुलकर विरोध न करेंगे परन्तु उनका यह समझना कोरा भ्रम था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जान हथेली पर लेकर रणभूमि की ओर उमड़ पड़े। साथ ही यह सिद्ध कर दिया कि देश पहले है धर्म बाद में।

10 सितम्बर, 1965 में कसूर क्षेत्र में घमासान युद्ध छिड़ गया। पाकिस्तान को अपनी मँगनी के पैटन टैंकों पर बहुत नाज था। इन फौलादी टैंकों द्वारा सब कुछ रौंदते हुए भारतीय सीमा में घुस आने की उनकी योजना थी परन्तु उनका हौसला भारतीय वीरों के सामने पस्त हो गया। अपने साथियों को आगे बढ़ने के लिए ललकारते हुए अब्दुल हमीद मोर्चे से आगे बढ़े। उसने देखा, दुश्मन सिर से पैर तक लोहे का है। उनकी ऐन्टी टैंक बन्दूक ने आग उगलनी शुरू कर दी। हमीद का निशाना तो अचूक था ही।

लोहे का दैत्य एक गिरा, दूसरा गिरा, और तीसरा गिरा। 'आगे बढ़ो' हमीद ने जोर से नारा लगाया। क्षणभर में तीनों टैंक बरबाद हो गए, पाकिस्तानी हमलावरों को मुँह की खानी पड़ी। उस समय हमीद में न जाने कौन-सी अद्भुत शक्ति भर गई थीं वह अपने प्राण हथेली पर लेकर आक्रमण करता जा रहा था। इसी बीच कोई चीज उनके सीने से टकराई। उन्हें दर्द का एहसास नहीं हुआ। क्षण भर में ऐसा लगा कि हर तरफ अँधेरा ही अँधेरा छाता जा रहा है। उन्होंने फिर 'आगे बढ़ो' कहना चाहा, मगर होठों से शब्द न निकल सके। इसलिए उन्होंने एक ऐसा शब्द कहा, 'अल्लाह' जिसमें होठों को हिलाने की जरूरत नहीं होती। यह शब्द इतना गूँजा की रणभूमि की सारी आवाजें दब गईं। हर तरफ सन्नाटा छा गया ....एक अनन्त सन्नाटा......।

उन्होंने अपने बेटों और बेटी के लिए सौगात न भेजी, परन्तु उन्होंने गाजीपुर को एक बहुत कीमती सौगात 'परमवीर चक्र' के रूप में भेजी, जो उन्हें मरणोपरान्त प्रदान किया गया।

यह परमवीर चक्र हवलदार अब्दुल हमीद को ही नहीं मिला है, यह भारतीय सेना की इकाई और भारत की एकता को भी मिला है। खुशनसीब है वह माँ जिसने शान से मरने वाले और अपने देश के लिए कुरबान हो जाने वाले अब्दुल हमीद को जन्म दिया।

देश की आज़ादी पर मिटने वाला वीर आज हमारे बीच नहीं है किन्तु अपने त्याग और बलिदान से वे आज भी अमर है। उनकी पावन स्मृति हमें देश-प्रेम और राष्ट्रीय-एकता का गौरवमय संदेश सुना रही है।

सभी हिन्दुस्तानी एक हैं, चाहे वह किसी भी मजहब के क्यों न हों।

हमीद की कुरबानी इसकी जीती जागती मिसाल है।

अभ्यास

1.निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

क.अब्दुल हमीद का जन्म कब और कहाँ हुआ ?

ख.उनके पिता का क्या नाम था ?

ग.सेना में भर्ती होने के पहले वे क्या करते थे ?

घ.उन्होंने किन दो प्रमुख लड़ाइयों में भाग लिया और कहाँ-कहाँ मोर्चा सँभाला ?

ड.किस वीरतापूर्ण कार्य के लिए उन्हें परमवीर चक्र मिला ?

च.चीन के युद्ध में हमीद ने जो वीरता दिखाई, उसके लिए उन्हें सेना का कौन-सा पद दिया गया?

2.गाजीपुर का निवासी होना गौरव की बात क्यों है ? सही उत्तर के सामने सही (□) कीजिए-

क.क्योंकि गाजीपुर उत्तर प्रदेश का समृद्ध इलाका है।

ख.क्योंकि अब्दुल हमीद गाजीपुर के थे।

ग.क्योंकि गाजीपुर के अब्दुल हमीद को त्याग और वीरता के लिए परमवीर चक्र मिला था।

3.किसी सैनिक अधिकारी से बातचीत करके ज्ञात कीजिए कि सैनिक को असाद्द्वारण वीरता के लिए कौन-कौन से पदक प्रदान किए जाते है। सैनिक को दिया जाने वाला सर्वोच्च पदक क्या है ?

4.परमवीर चक्र पाने वाले वीरों की सूची बनाइए।

5.किसी प्रसिद्ध देशभक्त की जीवनी प़ढिए और अपने साथियों को सुनाइए।

पाठ - 32

प्रमुख खिलाड़ी

मेजर ध्यानचंद

'हॉकी' भारत का राष्ट्रीय खेल है। भारत में खेलों के इतिहास पर नज़र डालें तो पायेंगे कि हॉकी का एक स्वर्णिम युग रहा है। स्वतंत्रता से पहले जब खेलों के लिए सुविधाओं एवं प्रशिक्षण का अभाव था, उस समय भी अनेक ऐसे खिलाड़ी हुए जिन्होंने अपनी प्रतिभा एवं कड़े परिश्रम के बल पर भारत को विश्व में सम्मान दिलाया। हॉकी में भारत को पहचान दिलाने में मेजर ध्यानचन्द का विशेष योगदान है।

ध्यानचंद की बचपन से ही खेलों में विशेष रुचि थी। सन् 1922 ई0 में वे सेना में भर्ती हुए। चार वर्ष बाद ही उन्हें भारतीय हॉकी टीम के साथ न्यूजीलैण्ड जाने का अवसर मिला। यहाँ अपने खेल से उन्होंने सबको बहुत प्रभावित किया। वे सन् 1928 ई0 के ओलम्पिक खेलों में भाग लेने एम्सटर्डम् पहुँचे। वहाँ भारत की हॉकी टीम ने अनेक देशों की हॉकी टीमों को हराकर भारत के लिए पहला स्वर्ण पदक जीता। यह एक गौरवपूर्ण घटना थी, किन्तु इससे भी अद्दिक शानदार प्रदर्शन सन् 1936 ई0 में बर्लिन ओलम्पिक में मेजर ध्यानचन्द के नेतृत्व में भारतीय हॉकी टीम का था।

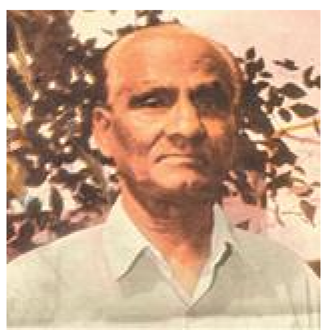

एक रोचक बात यह है कि इस खेल में हिटलर भी मौजूद था। उसी के सामने ध्यानचन्द ने चमत्कारिक ढंग से जर्मनी की टीम को पराजित किया। हिटलर ने ध्यानचन्द को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अनेक प्रलोभन दिए किन्तु इन प्रलोभनों के बावजूद भी ध्यानचन्द ने हिटलर का प्रस्ताव ठुकरा दिया। भारत का यह नौनिहाल भारतवर्ष, भारतीय फौज और हॉकी की सेवा में आजीवन समर्पित रहा।

मेजर ध्यानचन्द के जन्म दिवस को राष्ट्रीय खेल दिवस के रूप में मनाया जाता है। वे खिलाड़ियों के सरताज 'दद्दा' के नाम से विख्यात थे। सन् 1956 ई0 में इन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया। इनका नाम भारतीय खेल जगत में सदैव अमर रहेगा।

3 दिसम्बर सन् 1979 ई0 को लम्बी बीमारी के उपरान्त इनका निधन हो गया। इनकी याद में झाँसी स्थित एक ‘स्टेडियम’ का नाम ‘मेजर ध्यानचन्द स्टेडियम’ रखा गया। मेजर ध्यानचन्द का अनुसरण करके इनके भाई रूपचन्द ने भी हॉकी में भारत का नाम रोशन किया।

खेल जगत के अन्य क्षेत्रों में ऐसे और भी खिलाड़ी हैं जिन्होंने विश्व में भारत का नाम ऊँचा किया है।

सुनील गावस्कर

मैं तो एक हजार से भी खुश था, अब दस गुना खुश हँू।”

-गावस्कर

रन संख्या 9999 और अब सुनील गावस्कर और क्रिकेट इतिहास के सुनहरे पन्ने के बीच में केवल एक रन की दूरी थी-सिर्फ 22 गज। एजाज़ फकीह की एक गेंद आयी और क्रिकेट के इस अनूठे ‘लिटिल मास्टर’ ने खूबसूरत कट लगाकर रन के लिए दौड़ लगा दी। खेल के पूरे इतिहास में एक रन के लिए उठे कदमों में कभी ऐसा उत्साह नहीं रहा। गावस्कर ने इन दो रनों के साथ अपने दस हजार रन पूरे किए और क्रिकेट इतिहास के सुनहरे पन्ने में अपना नाम अंकित कराया। पूरा देश उत्साहित था और स्वयं गावस्कर भी। इनका कहना था मैं तो एक हजार से भी खुश था, अब दस गुना खुश हँू।”

सुनील मनोहर गावस्कर का जन्म सन् 1949 ई0 में मुम्बई में हुआ। इनकी शिक्षा सेंट जेवियर्स हाईस्कूल एवं मुम्बई विश्व विद्यालय में हुई। गावस्कर के टेस्ट जीवन की शुरुआत सन् 1971 में वेस्टइंडीज दौरे से हुई।

सुनील गावस्कर एक मात्र बल्लेबाज हैं जिन्होंने एक कैलेण्डर वर्ष में 1000 रन चार बार बनाये। सुनील गावस्कर ने 1983 में चेन्नई में वेस्टइंडीज के विरुद्ध बिना आउट हुए 236 रन बनाए। यह उनके टेस्ट जीवन की सबसे बड़ी पारी थी।

सुनील मनोहर गावस्कर आँकड़े एक दृष्टि में

टेस्ट मैच बल्लेबाजी

टेस्टपारीनाट आउट रन योगअधिकतम्औसतशतकअर्द्धशतककैच

1252141610122236 अविजित51.123445108

बल्लेबाजी एक दिवसीय मैच

मैच पारीनाट आउटरन योगअधिकतमऔसतशतकअर्द्धशतककैच

10810214309210335.1312722

सुनील गावस्कर ने अपने खेल जीवन में भारतीय टीम का कप्तान के रूप में नेतृत्व किया। वे एक उत्तम खिलाड़ी ही नहीं बल्कि एक कुशल लेखक भी हैं। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'सनिडेज' है। एक महान बल्लेबाज के रूप में गावस्कर जीते जी किंवदन्ती बन चुके हैं। इन्हें 'लिटिल मास्टर' के नाम से भी जाना जाता है।

दैनिक जीवन में खेलकूद का अति विशिष्ट स्थान है। खेल से संयम, दृढ़ता, गम्भीरता, एकाग्रता एवं सहयोग की भावना का विकास होता है। खेलकूद, अनुशासन, विश्व-बन्धुत्व एवं शारीरिक विकास स्थापित करने का सशक्त माध्यम है। खेलकूद आपस में मिलजुल कर रहना, बैर-भाव समाप्त करना तथा आपसी तालमेल के द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करना सिखाता है।

अभ्यास

1.ओलम्पिक खेलों में भारत को प्रथम स्वर्णपदक किस खेल में मिला ? इस पदक को प्राप्त करने वाले प्रमुख खिलाड़ी के विषय में लिखिए।

2.सुनील गावस्कर को 10000 रन पूरा करने में किस प्रकार सफलता मिली ?

3.कौन से खेल में आपकी सर्वाधिक रुचि है और क्यों ?

4.सही मिलान कीजिए-

क. मेजर ध्यानचन्द के जन्म दिवस कोक. एक कुशल लेखक भी हैं।

ख. सुनील गावस्कर नेख. 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया।

ग. मेजर ध्यानचन्द को सन् 1956 ई. मेंग. राष्ट्रीय खेल दिवस के रूप में मनाते हैं।

घ. गावस्कर खिलाड़ी ही नहीं बल्किघ. 'सनिडेज' नामक पुस्तक लिखी।

5.सही विकल्प चुनकर सही (□) का चिह्न लगाइए-

Ûदैनिक जीवन में खेलकूद का बहुत महत्त्व है क्योंकि-

क.इससे समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है।

ख.इससे धन मिलता है ।

ग.यात्रा का सुख मिलता है।

घ.इससे जीवन में अनुशासन आता है और शारीरिक विकास होता है।

6..एक महान खिलाड़ी बनने के लिए किन-किन विशेषताओं का होना आवश्यक है ? अपने विचार लिखिए।

योग्यता विस्तार:

पिछली कक्षाओं में आप साक्षात्कार के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। आपके गाँव/कस्बा/शहर में ऐसे अनेक खिलाड़ी होंगे, जिन्होंने जनपद,प्रदेश अथवा राष्ट्रीय स्तर पर खेलकूद में विशेष स्थान प्राप्त किया होगा। उन्हें अपने विद्यालय में आमंत्रित कर अथवा व्यक्तिगत रूप से मिलकर उनका साक्षात्कार लीजिए और जानिए कि उन्होंने किस प्रकार इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त की।

अपने पुस्तकालय की पत्र-पत्रिकाओं से देश के अन्य महान खिला़डियों के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए।

पाठ - 33

एवरेस्ट विजेता

तेनजिंग

"प्रातः काल मौसम बिल्कुल साफ था, वे चल पड़े। जैसे-जैसे वे चढ़ाई चढ़ रहे थे, साँस लेने में कठिनाई हो रही थी। वे प्यास से बेहाल थे। अब केवल 300 फुट की चढ़ाई बाकी थी। उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती थी, एक बड़ी सी खड़ी चट्टान को पार करना। इसे पार करते समय बर्फ खिसकने का खतरा था। मगर उनके हौंसले और दृढ़-संकल्प के आगे चट्टान को भी घुटने टेकने पड़े।"

शेरपा तेनजिंग, हिमालय की गोद में पले एक साद्दारण व्यक्ति थे, जिन्होंने अपने आत्म-विश्वास के बल पर असम्भव को सम्भव कर दिखाया। हालाँकि उन्हें पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिला फिर भी वे कई भाषाएँ बोल सकते थे। वे बचपन से ही हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियों पर घूमने के स्वप्न देखा करते थे।

तेनजिंग का बचपन याकों के विशाल झुण्डों की रखवाली में बीता। याकों से वस्त्रों के लिए ऊन, जूतों के लिए चमड़ा, ईंद्दन के लिए गोबर तथा भोजन के लिए दूध, मक्खन एवं पनीर मिलता था। पहाड़ों की ढलानों पर चराते-चराते वे याकों को अट्ठारह हजार फुट की ऊँचाई पर ले जाया करते थे, जहाँ दूर-दूर तक हिममण्डित ऊँची-ऊँची चोटियाँ दिखाई पड़ती थीं। उनमें सबसे उन्नत चोटी थी-'शोभो लुम्मा'। उनके देशवासी एवरेस्ट को इसी नाम से पुकारते थे। 'शोभो लुम्मा' के बारे में यह बात प्रचलित थी कि कोई पक्षी भी इसके ऊपर से उड़ नहीं सका है। तेनजिंग इस अजेय पर्वत-शिखर पर चढ़ने और इस पर विजय प्राप्त करने का सपना देखने लगे। धीरे-धीरे यह स्वप्न उनके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा बन गयी।

तेनजिंग को पर्वतारोहण का पहला मौका सन् 1935 ई0 में मिला। उस समय वे मात्र इक्कीस वर्ष के थे। उन्हें अंग्रेज पर्वतारोही शिप्टन के दल के साथ कार्य करने के लिए चुना गया। काम मुश्किल था। बार-बार नीचे के शिविर से ऊपर के शिविर तक भारी बोझ लेकर जाना होता था। अन्य शेरपाओं की तरह वे भी बोझ ढोने के अभ्यस्त थे। पहाड़ों पर चढ़ने

का यह उनका पहला अनुभव था। कई बातें बिल्कुल नई और रोमांचक थी। उन्हें विशेष प्रकार के कपड़े, जूते और चश्मा पहनना पड़ता था और टीन के डिब्बों में बन्द विशेष प्रकार का भोजन ही करना होता था। उनका बिस्तर भी अनोखा था। देखने में यह एक बैग जैसा प्रतीत होता था। उन्होंने चढ़ने की कला में भी बहुत कुछ नई बातें सीखीं। नवीन प्रकार के उपकरणों के प्रयोग, रस्सी व कुल्हा़डियों का उपयोग और मार्गों को चुनना आदि ऐसी ही बातें थी, जिन्हें जानना आवश्यक था।

और सपना सच हुआ ......

सन् 1953 ई0 में तेनजिंग को मौका मिला कि वह अपना बचपन का सपना पूरा कर सकें। उन्हें एक ब्रिटिश पर्वतारोही दल में सम्मिलित होने का आमंत्रण मिला। दल का नेतृत्व कर्नल हंट कर रहे थे। इस दल में कुछ अंग्रेज और दो न्यूजीलैंड वासी थे, जिनमें एक एडमंड हिलेरी थे।

वे अभियान की तैयारी में जुट गए। उन्होंने स्वस्थ रहने के लिए भरपूर प्रयास किया। वे प्रातःकाल उठकर पाषाण-खंडों से एक बोरा भरते और इसे लेकर पहा़डियों पर ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने का अभ्यास करते रहे। उन्होंने ‘करो या मरो’ का दृढ़ संकल्प कर लिया था। दार्जिलिंग से प्रस्थान करने के लिए मार्च 1953 की तिथि निश्चित हुई। उनकी पुत्री नीमा ने साथ ले जाने के लिए एक लाल-नीली पेन्सिल दी, जिससे वह स्कूल में काम करती थी। एक मित्र ने राष्ट्रीय-ध्वज दिया। तेनजिंग ने दोनों वस्तुएँ एवरेस्ट शिखर पर स्थापित करने का वचन दिया।

वे भरपूर आत्म-विश्वास एवं ईश्वर में दृढ़ आस्था के साथ 26 मई 1953 को प्रातः साढ़े छः बजे आगे बढ़े। सुरक्षा के लिए उन्होंने रेशमी, ऊनी और वायुरोधी तीनों प्रकार के मोजे पहन रखे थे। संयुक्त राष्ट्र संघ, ग्रेट ब्रिटेन, नेपाल और भारत के चार झण्डे उनकी कुल्हाड़ी से मजबूती से लिपटे हुए थे। उनकी जैकेट की जेब में उनकी पुत्री की लाल-नीली पेन्सिल थी। जब केवल 300 फुट और चढ़ना शेष था तो एक बड़ी बाधा आयी। यह एक खड़ी चट्टान थी। पहले हिलेरी एक सँकरी और ढालू दरार से होकर इसकी चोटी पर पहुँचे फिर तेनजिंग ने यहाँ कुछ समय विश्राम किया। उनका लक्ष्य समीप था। हृदय उत्साह और उत्तेजना से भर उठा । वे चोटी के नीचे कुछ क्षण रुके.......ऊपर की ओर देखा और फिर बढ़ चले। तीस फुट की एक रस्सी के सिरे दोनों के हाथ में थे। उन दोनों में दो मीटर से अधिक अन्तर न था। धैर्य के साथ आगे बढ़ते हुए प्रातः साढ़े ग्यारह बजे संसार के सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच गए।

एवरेस्ट की चमकती चोटी पर खड़े तेनजिंग व हिलेरी का मन हर्ष एवं विजय की भावना से भर उठा। ऐसा दृश्य उन्होंने जीवन में कभी नहीं देखा था। वे अभिभूत हो उठे। तेनजिंग ने राष्ट्र ध्वज बर्फ में गाड़े और कुछ मिठाइयाँ व बेटी की दी हुई पेंसिल बर्फ में गाड़ दी। उन्होंने भगवान को धन्यवाद दिया और मन ही मन अपनी सकुशल वापसी की प्रार्थना की।

एवरेस्ट से लौटने पर नेपाल नरेश ने उन्हें राजभवन में निमंत्रित किया और 'नेपाल-तारा' पदक पहनाया। भारत में भी उनका भव्य स्वागत हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने पर्वतारोहियों के सम्मान में एक स्वागत-समारोह आयोजित किया।
4 नवम्बर, 1954 ई0 को पण्डित नेहरू ने हिमालय माउंटेनियरिंग इंस्टीट्यूट का उद्घाटन किया। तेनजिंग ने विदेश जाकर प्रशिक्षण प्राप्त किया और इस संस्थान के निदेशक बने। वे भारत के सद्भावना राजदूत भी रहे। सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने सलाहकार के रूप में अपने अनुभव से संस्थान को लाभान्वित किया।
उनके अदम्य साहस और संकल्प में दृढ़ता के कारण उन्हें 'बर्फ का शेर' कहा जाता है। मार्कोपोलो, कोलम्बस, वास्कोडिगामा, यूरी गागरिन, पियरी जैसे साहसिक अभियानों के नेतृत्वकर्ता की भाँति तेनजिंग का नाम भी सदैव इतिहास में अमर रहेगा।

एवरेस्ट के बारे में........

इस पर्वत शिखर को यह नाम भारतीय सर्वे विभाग के प्रमुख सर जार्ज एवरेस्ट के सम्मान में प्रदान किया गया।

बछेन्द्रीपाल

शेरपा तेनजिंग द्वारा एवरेस्ट विजय के ठीक इक्तीस वर्ष बाद एक बार फिर भारतीयों ने एवरेस्ट विजय का इतिहास रचा। यह अवसर था किसी भारतीय महिला द्वारा एवरेस्ट शिखर पर पहुँचने का। 23 मई, सन् 1984 का दिन सम्पूर्ण भारत एवं विशेषकर नारी जगत् के लिए गौरव और सम्मान का दिन था। इसी दिन प्रथम भारतीय महिला बछेन्द्री पाल ने एवरेस्ट की चोटी पर कदम रखा।
उत्तर काशी (उत्तराखण्ड) के नाकुरी गाँव में जन्मी बछेन्द्री पाल ने साहस और दृढ़ निश्चय का परिचय देते हुए एवरेस्ट शिखर तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की। इन्हें बचपन से ही पर्वत बहुत आकर्षित करते थे। जब ये एम0 ए0 की पढ़ाई कर रहीं थी उनके मन में पर्वतराज हिमालय की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करने की इच्छा बलवती हुई। अपने इस स्वप्न को पूरा करने के उद्देश्य से इन्होंने नेहरू पर्वतारोहण संस्थान से पर्वतारोहण का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इन्होंने बड़ी लगन, मेहनत से पर्वतारोहण के गुर सीखे और कुशलता प्राप्त की। एवरेस्ट यात्रा से पूर्व, इन्होंने नेहरू पर्वतारोहण संस्थान द्वारा आयोजित 'प्री-एवरेस्ट ट्रेनिंग कैम्प-कम-एक्सपीडिशन' में भी भाग लिया।

आखिरकार 23 मई सन् 1984 ई0 को वह शुभ दिन आ गया जिसका स्वप्न पाल ने बचपन से देखा था, अपने लक्ष्य को पाने के लिए कठिन परिश्रम से प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उन्होंने पर्वत विजय करके यह सिद्ध कर दिया कि महिलाएँ किसी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं। उनमें साहस और धैर्य की कमी नहीं है। यदि महिलाएँ ठान लें तो कठिन से कठिन लक्ष्य भी प्राप्त कर सकती हैं।

एवरेस्ट विजय अभियान में बछेन्द्री पाल को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यह साहसिक अभियान बहुत जोखिम भरा था। इसमें कितना जोखिम था इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अंतिम चढ़ाई के दौरान उन्हें साढ़े छः घंटे तक लगातार चढ़ाई करनी पड़ी। इनकी कठिनाई तब और बढ़ गई जब इनके एक साथी के पाँव में चोट लग गई। इनकी गति मंद पड़ गई थी तब ये पूरी तेजी से आगे नहीं बढ़ सकती थीं, फिर भी ये हर कठिनाई का साहस और धैर्य से मुकाबला करते हुए आगे बढ़ती रहीं। अन्ततः 23 मई, सन् 1984 को दोपहर एक बजकर सात मिनट पर वे एवरेस्ट के शिखर पर थीं। इन्होंने विश्व के उच्चतम शिखर को जीतने वाली सर्वप्रथम पर्वतारोही भारतीय महिला बनने का अभूतपूर्व गौरव प्राप्त कर लिया था।

एक प्रेसवार्ता में जब सुश्री बछेन्द्री पाल से यह पूछा गया कि "एवरेस्ट पर पहुँचकर आपको कैसा लगा ?" इन्होंने उत्तर दिया- "मुझे लगा मेरा एक सपना साकार हो गया।"

एवरेस्ट विजय के पहले सुश्री बछेन्द्री पाल एक महाविद्यालय में शिक्षिका थीं। लेकिन एवरेस्ट की सफलता के बाद भारत की एक 'आयरन एण्ड स्टील कम्पनी' ने इन्हें खेल सहायक की नौकरी की खुद पेशकश की। इन्होंने इस आशा के साथ यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि यह कम्पनी इन्हें और अधिक पर्वत शिखरों पर विजय पाने के प्रयास में सहायता, सुविधा तथा प्रेरणा प्रदान करती रहेगी। इस समय सुश्री पाल 'टाटा स्टील एडवेन्चर फाउन्डेशन' नामक संस्था में नई पीढ़ी के पर्वतारोहियों को प्रशिक्षण देने का कार्य कर रहीं हैं।

महिलाओं द्वारा पर्वतारोहण का सिलसिला बछेन्द्री पाल के बाद रुका नहीं। उनसे प्रेरणा पाकर हरियाणा के इंडोतिब्बत पुलिस बल के अधिकारी पद पर कार्यरत सुश्री संतोष यादव ने सन् 1992 ई0 और 1993 ई0 में लगातार दो बार एवरेस्ट की सफल चढ़ाई की।

अन्य भारतीय महिला पर्वतारोही

कु0 चन्द्रप्रभा अटवाल इन्होंने 24,645 फुट ऊँचे नंदा देवी पर्वत

सुश्री हर्षवंती विष्ट शिखर पर विजय प्राप्त की।

कु0 रेखा शर्मा

संतोष यादव

अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित

कु0 चन्द्रप्रभा अटवाल

सुश्री हर्षवंती विष्ट

अभ्यास

1.शेरपा तेनजिंग को पर्वतों की किस बात ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया होगा ?

2.बछेन्द्री पाल ने पर्वतारोहण का प्रशिक्षण कहाँ से प्राप्त किया ?

3.भारत की दो महिला पर्वतारोहियों के नाम बताइए।

4.करके देखिए:

अपनी कक्षा में अपने द्वारा किए गए अब तक के सबसे कठिन, साहसिक कार्य के विषय में कुछ पंक्तियाँ बोलिए।

5.आप कौन-सा साहसिक कार्य करना पसन्द करेंगे ? विस्तार से कारण सहित लिखिए।

Table of Contents

. Table of Contents
. ऋषि कुमार नचिकेता
. वैदिक कालीन नारियाँ
. गार्गी
. महर्षि वाल्मीकि
. श्रीकृष्ण
. भीष्म
. महाराजा अग्रसेन
. महावीर स्वामी
. चन्द्रगुप्त मौर्य
. आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान
. मीराबाई
. अकबर महान
. रानी दुर्गावती
. अब्दुर्रहीम खानखाना
. तानसेन
. हैदर अली
. रानी चेन्नम्मा
. महात्मा ज्योतिबा फुले
. एनी बेसेन्ट
. स्वतंत्रता संग्राम की वीरांगनाएँ
. रानी लक्ष्मीबाई
. हमारे महान वनस्पति-विज्ञानी
. (वनस्पतिशास्त्री)
. जगदीश चन्द्र बसु
. प्रोफेसर बीरबल साहनी
. बाल गंगाधर तिलक
. भारत के महान शिक्षाविद्
. पण्डित मदन मोहन मालवीय
. सर सैयद अहमद खाँ
. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर
. गोपाल कृष्ण गोखले
. मुंशी प्रेमचन्द
. सुब्रह्मण्यम् भारती
. विनायक दामोदर सावरकर
. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद
. मदर टेरेसा
. वीर अब्दुल हमीद
. प्रमुख खिलाड़ी
. मेजर ध्यानचंद
. सुनील गावस्कर
. एवरेस्ट विजेता
. तेनजिंग

. बछेन्द्रीपाल